अलंकार सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द

उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और उपमा-वाची पदों की व्याख्या उपमालंकार में की गई है—उपमेय को वर्ण्य और उपमान को अवर्ण्य भी कहते।

श्लेषपद—जिस पद से दो या दो से अधिक अर्थ निकले।

संभव—जिसका होना संभव हो।

असंभव—जिसका होना संभव न हो।

उपमेय वाक्य—जहाँ कुल वाक्य उपमेय के रूप में हो।

उपमान वाक्य—जहाँ कुल वाक्य उपमान के रूप में हो।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव—एक में दूसरे अर्थ की छाया मात्र हो

प्रस्तुत—जिसका वर्णन उपस्थित हो; उपमेय, अप्रकृत

अप्रस्तुत—जिसका वर्णन उपस्थित न हो, उपमान, प्रकृत

श्लिष्ट विशेषण—एक ही विशेषण पद दो या दो से अधि पदार्थों का बोधक हो।

प्रसिद्ध निषेध—जिसका निषेध प्रसिद्ध हो।

रसाभास—जहाँ रसवर्णन अनुचित रीति से हो अथवा पशु पक्षियों, नदी वृक्षादिकों में हो; जैसे-वीरों का भागना, भयानक रस का अनुचित वर्णन है।

भावाभास—जहाँ भावों का वर्णन अनुचित रीति से हो; जैसे-वैरी की बड़ाई करना।

भावशान्ति—जहाँ कोई भाव शान्त होगया हो।

कोई भाव उदय होगया हो।

दो विरुद्ध भावों का एक ही साथ वर्णन हो।

जहाँ एक के पीछे दूसरा भाव आवे।

रस भाव का वर्णन प्रधान रूप से हो।

...रस या भाव का वर्णन अप्रधान रूप से हो और वह...

[illegible]

हिन्दी-अलङ्कार-प्रबोध

काव्य क्या है ?

विद्वानों ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" रस से पूर्ण वाक्य का
न काव्य कहा है ।

वाक्य*-शब्दों के उस संगठन को कहते हैं जिसमें कर्त्ता
र क्रियादि यथा स्थान में रह कर किसी अर्थ को पूरा करें ।

अभिधा

शब्दों में तीन प्रकार की शक्ति है, उन्हीं शक्तियों के द्वारा
वा वाक्य आदि का अर्थ जाना जाता है; पहिली अभिधा,
री लक्षणा और तीसरी व्यंजना है । जिस शक्ति से शब्दों
मुख्य (सीधासादा) अर्थ जाना जाता है, उसको अभिधा
हते हैं । अभिधा द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो उसे वाच्यार्थ कहते हैं
च्यार्थ वाले शब्द 'वाचक' होते हैं ।

अभिधान वा व्याकरणादि-शास्त्र उक्त वाच्यार्थ-बोध के
धान सहायक हैं; जैसे—पंकज कहने से जल से उत्पन्न पुष्प-लता
शेष के अर्थ का ज्ञान होता है, यही अर्थ पंकज शब्द का
च्यार्थ वा शब्दार्थ है । शब्दमात्र में ही इस प्रकार का
च्यार्थ वा शब्दार्थ होता है ।

---

* वाक्यों के भेद तथा शब्दों के संगठन की रीति आदि जानने के
लिये "रचना प्रबोध" नाम की पुस्तक देखिये ।

लक्षणा

जहाँ शब्दों का सीधासादा अर्थ न लगाकर, प्रयोजन या रूढ़ि के कारण कोई निकट सम्बन्ध रखने वाला, दूसरा अर्थ लिया जाय वहाँ लक्षणा होती है। लक्षणा के द्वारा जो अर्थ जाना जाय वह लक्ष्यार्थ कहलाता है, जैसे-गंगावासी पद में गंगा पद का वाच्यार्थ जल-प्रवाह है, उसमें वास करना असंभव है; इसलिये गंगातीर वासी अर्थ होगा। जिस लक्षणा द्वारा वाच्यार्थ का विपरीत अर्थ समझा जाय उसे 'विपरीत लक्षणा' कहेंगे, जैसे-किसी क्षीण-काय-व्यक्ति को देख कर कहा जाय कि, कितना मोटा आदमी है। लक्षणा वाले शब्द लक्षक कहाते हैं।

व्यञ्जना

वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ को छोड़ कर जिसके द्वारा एक और अर्थ जाना जाय उसे व्यञ्जना कहते हैं। व्यञ्जना द्वारा जो अर्थ घटित होता है, 'व्यंगार्थ' कहलाता है; जैसे—

गेंद खेलने में किसी खिलाड़ी ने कहा, "अब तो अँधेरा होगया," इसका अर्थ यह है कि खेल बन्द कर देना चाहिये।

सुनने वालों की पृथक्ता के कारण एक वाक्य के कई व्यंगार्थ हो सकते हैं। किसी ने कहा,–५ बज गये,–पंडित गण समझेंगे–"संध्या का समय हुआ;" किसान समझेगा–"हल लेकर चलना चाहिये;" यात्री समझेगा, "चलने का समय हुआ;" ६ बजे स्कूल में पहुँचने वाला विद्यार्थी समझेगा, "स्कूल जाने का समय हुआ," आदि। व्यञ्जना वाले शब्द 'व्यञ्जक' कहाते हैं।

रस और भाव

"सुनि कवित्त को चित मधि, सुधि न रहे कछु और ।
होय मगन याहि मोद में सो "रस" कहि सिरमौर ॥"
"जब विभाव, अनुभाव अरु व्यभिचारी मिलि आनि ।
परिपूरण व्यापी जहां, उपजै सो "रस" जानि ॥"

रस पैदा होने का हेतु भाव है, भाव दो प्रकार के होते हैं— स्थायी और संचारी (व्यभिचारी) ।

स्थायीभावों का अस्तित्व मनुष्य के चित्त में हर समय मौजूद रहता है । रस की अनुकूलता पाकर उनका विकास होता है। स्थायी भाव ९ हैं:—

रति, हँसी, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य और निर्वेद । रत्यादिक भावों के कारणों को विभाव और कार्यों को अनुभाव कहते हैं । संचारी भाव इनके सहायक हो सकते हैं। संचारी भाव दो प्रकार के होते हैं:—

तन-संचारी (सात्विक) और मन-संचारी ।

"सुख दुख आदिक भावना हृदे माँहि जो होय ।
सो बिन यस्तु न परगटै सात्विक कहिये सोय ॥"

सात्विक भाव ८ प्रकार के होते हैं जिनके अर्थ नाम से ही प्रकट हैं ।

यथा:—१ स्वेद, २ स्तंभ, ३ रोमांच, ४ स्वरभंग, ५ कम्प, ६ विवरण, ७ आँसू और ८ प्रलय (बेहोशी) ।

तन-संचारी भाव स्थायी भावों को प्रकट करते हैं किंतु, मन-संचारी भाव स्थायी भावों से इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस

प्रकार नदी से तरंग प्रकट होती हैं। निर्वेदादि ३३ भाव मन-संचारी हैं। स्थायी भावों में भी निर्वेद का वर्णन कर चुके हैं किन्तु:—

> "तत्व ज्ञान बिरहादि तें जहँ जग को अपमान।
> और निदरिबो आपनो सो 'निर्वेद' बखान॥
> निज रस पूरण होन लौं 'थाई' जानि उदोत।
> गये रौद्र रस में वहै 'व्यभिचारी' पुनि होत॥"

इस प्रकार—१ निर्वेद २ ग्लानि ३ दीनता ४ शंका ५ त्रास ६ आवेग ७ गर्व ८ असूया ९ कोप (अमर्ष) १० समता ११ उत्सुकता १२ स्मृति १३ चिन्ता १४ तर्क (संशयात्मकतर्क, विचारात्मकतर्क) १५ मति १६ प्रीति १७ हर्ष १८ व्रीड़ा १९ अवहित्था (कुटिलता) ३३ चपलता २० श्रम २१ निद्रा २२ स्वप्न २३ आलस्य २४ वैपथ २५ मद २६ मोह २७ उन्माद २८ अपस्मार २९ जड़ता ३० विषाद ३१ व्याधि ३२ मरण ३३ धृति-यह मन-संचारी भाव हैं।

विभाव दो प्रकार का होता है—आलम्बन और उद्दीपन।

१. आलम्बन—जिसके सहारे से रस उत्पन्न होता है; जैसे:—शृङ्गार में नायक नायिका।

२. उद्दीपन—जिससे रस प्रदीप्त होता है; जैसे शृङ्गार में शृङ्गारिक भाव बढ़ाने वाली प्रकृति की अनुकूलता।

अनुभाव

जिन से रति, हँसी, शोक, क्रोध, उत्साह आदि का अनुभव होता है, वह उसी रस के अनुभाव कहलाते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक स्थायी भाव, विभाव के सहारे उत्पन्न और पोषित होकर अनुभाव रूपी वृक्ष बनता है। फिर संचारी, फूल के समान क्षण क्षण फूलकर इन सब के संयोग से मकरंद रूप रस बनता है, जोकि मधुप रूपी कवियों का जीवनाधार होता है।

प्रत्येक रस के आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव आदि का पूरा-विवरण जानने के लिये कोई बड़ा रस ग्रंथ अथवा हमारा रस प्रबोध देखना चाहिये। यही रस जब गद्य तथा पद्यादिक वाक्य में होता है तो काव्य का लक्षण घटित हो जाता है।

काव्य तीन प्रकार का होता है।

जहाँ वाच्य से व्यंग में अधिक चमत्कार हो, वह 'ध्वनि' और जहाँ व्यंग से वाच्य में अधिक वा समान चमत्कार हो वहाँ गुणीभूतव्यङ्ग, और जहाँ पर व्यंग का कुछ प्रभाव न हो केवल शब्द और अर्थ सम्बन्धी चमत्कार हो वहाँ 'आलङ्कारिक-काव्य' कहलाता है।

अलङ्कार

इस गद्य और पद्य में शब्द और अर्थ-सम्बन्धी कोई चमत्कार जिस से उत्पन्न हो उसे 'अलङ्कार' कहते हैं। जिस प्रकार कंकण, हार आदि आभूषण किसी सुन्दरी की स्वाभाविक सुन्दरता को कई गुना बढ़ा देते हैं, उसी प्रकार काव्य-सुन्दरी के भाव रूपी सौन्दर्य को बढ़ाने में अलङ्कार (आभूषण) सर्वथा

... प्रकार आभूषण सुन्दरी के शरीर प
सदैव नहीं रहते हैं उसी प्रकार अलंकार भी काव्य शरीर प
सर्वथा देखने में नहीं आते। अलंकार तीन प्रकार के होते हैं:—
शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

शब्दालङ्कार

जिस काव्य में कुछ शब्दसम्बन्धी चमत्कार हो अर्थात् जिस अर्थ वाला शब्द किसी वाक्य में आया हो उसकी जगह उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द रखने से वह चमत्कार न रहे उसे 'शब्दालङ्कार' कहते हैं, जैसे—

"बादर बुझावत हैं बीजुरी की आगि नाहिं,
बीजुरी न मारे बजमारे बदरान को।"

इसमें 'ब' अक्षर के कई बार आने से एक विचित्र शब्द-सौन्दर्य पैदा होता है।

शब्दालङ्कार के कई भेद हैं:—

अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र, पुनरुक्तवदाभास, पुनरुक्ति प्रकाश, वीप्सा, प्रहेलिका आदि।

अनुप्रास के भेद:—छेक, वृत्ति, लाट, श्रुति और अन्त्य।

छेकानुप्रास,—जहाँ स्वर रहित व्यञ्जनों का एक बार सादृश्य हो वहाँ 'छेकानुप्रास' होता है; जैसे:—

---

* आवृत्ति बरण अनेक की दोय दोय जब होय।
है 'छेकानुप्रास' सो समता बिनहू सोय॥ (भाषा भूषण)

"*रसवती रसना करके कहीं,*
कथित थी कथनीय-गुणावली।
मधुर-राग सधे स्वर ताल में,
कलित-कीर्ति अलापित थी कहीं" ॥

यहाँ पहले पाद में 'स' और 'क' दूसरे में 'क' तीसरे में 'स' चौथे में 'क' दो २ बार आये हैं।

"*सरल स्वभाव राम महतारी, बोली बचन धीर धरि भारी।*"

इस पद्य में 'सरल स्वभाव' में 'स' 'राम और महतारी' में 'म' 'बोली और बचन' में 'ब' तथा 'धीर और धारी' में 'ध' का एक बार सादृश्य है।

"*राम-राज्य-अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर-नारि।*"

में छेकानुप्रास की झलक है।

*वृत्ति—जब एकही अथवा कई वर्णों का कई बार सादृश्य हो तो उसे "वृत्त्यनुप्रास" कहते हैं; जैसे—

"*अब अप्रिय हुआ है क्यों उसे मौन आना!*
प्रति दिन जिसकी ही ओर आँखें लगी हैं॥
पगाहित जिसके मैं नित्य ही हूँ बिछाती—
पुलकित पलकों के पाँवड़े प्यार द्वारा॥"

यहाँ अंतिम पाद में 'प' का सादृश्य कई बार हुआ।

---

*एक द्वि या बहु बरन की समता सहज सुहाय।
अनुप्रास पुनी वही कहत सकल कविराय॥ (काव्य प्रभाकर)

वृत्ति ३ प्रकार की होती है:—'उपनागरिका' 'परुषा' और कोमला। जिसमें टवर्ग को छोड़कर कवर्ग से पवर्ग तक अथवा इन्हीं वर्गों के पंचम वर्णयुक्त जो वर्ण हों वह माधुर्य्यगुण प्रकाशक कहलाते हैं। इनमें से कई अक्षरों का कई बार सादृश्य हो वहाँ 'उपनागरिका वृत्ति' होती है। टवर्ग के सब वर्ण तथा श, ष और वर्ग के पहले, तीसरे और दूसरे चौथे वर्णों के संयोग ओज प्रकाशक वर्ण कहलाते हैं। ओज-प्रकाशक-वर्णों की समता में 'परुषावृत्ति' होती है। ओज और माधुर्य्य प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त जहाँ अन्य वर्णों की वृत्ति हो उसे 'कोमला-वृत्ति' कहते हैं। कहीं २ एक ही पद्य में दो या तीनों वृत्ति आजाती हैं।

उपनागरिका—

"प्रिय पावन पावस लहरि लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि ताको ओर न छोर॥"

"चातक चालि कोयल ललित बोलत मधुरे बोल।
कूकि कूकि केकी कलित कुंजन करत कलोल॥"

इन पद्यों में 'च' 'छ' और 'क' की आवृत्ति से 'उपनागरिका' वृत्ति है और 'ल' की आवृत्ति से कोमला का प्रभाव है।

उपनागरिका, कोमला, परुषावृत्ति सु तीन।
जिन जिन अक्षर होय जहँ समता वृत्ति प्रवीन॥ (कविकुलकंठाभरण)
कवि मधुर वर्नन कहत वृत्ति तीन विधि मान।
मधुर बरन जामें बसै उपनागरिका जान॥ (भाषाभूषण)

* परुषा—

मर्कट विकट भट जुटत सम्मुख लरत तनु जर जर भये।

इस पद्य में 'ट' का कई बार सादृश्य होने से परुषावृत्ति है।

"जहाँ रुंडन पै रुंड मुंड झुंडनि के झुंड कटैं,

कोटिन वितुंड चलु वन्धुकी समान ।"

तहाँ सेवक दिसान भीम रुद्र के समान,

हरि शंकर सुजान झुकिम्कारी किरवान ॥

इसी प्रकार इस छंद में 'ड' की आवृत्ति से 'परुषावृत्ति' है।

कोमला—

विराति विवेक विनय विज्ञाना, वोध यथारथ वेद-पुराना ।

इस पद्य में 'व' की आवृत्ति से 'कोमला वृत्ति' है।

लाटानुप्रास—

एक से पद या पद-समूह या वाक्य एक ही अर्थ में अन्वय की पृथकता से दो या कई बार आवें अर्थात् शब्द और अर्थ में भेद न हो केवल तात्पर्य्य में भेद हो, उसे 'लाटानुप्रास'

---

* द्वित्व परुषा कहत सब जामें बहुत समास।

बिनु समास ह मधुरता कहैं कोमलोल्लास ॥ (भाषा भूषण)

छेक और वृत्ति में निरर्थक वर्णों का तथा लाट में सार्थक वर्णों का अनुप्रास होता है।

लाटानुप्रास और यमक का भेद—लाटानुप्रास में जिन पदों या पद-समूहों की आवृत्ति होती है वह एक ही अर्थ वाले होते हैं, केवल भाव में भेद होता है। यमक में भिन्न भिन्न या बिना अर्थ वाले पद होते हैं। अनुप्रास में केवल वर्णों की आवृत्ति होती है और यमक में स्वर और व्यञ्जन दोनों की आवृत्ति होती है अतः यमकालङ्कार दोनों से भिन्न हुआ।

कहते हैं, यथा:—"करि करुना करुनायतन" के करुना' पद में 'लाटानुप्रास' है।

लाट के भी पदों की आवृत्ति तथा वाक्यों की आवृत्ति भेद होते हैं।

वाक्यावृत्ति में—

"पूत कपूत तो क्यों धन संचय।
पूत सपूत तो क्यों धन संचय॥"

"औरन के जाँचे कहा जिन जाँच्यो शिवराज।
औरन के जाँचे कहा जु न जाँच्यो शिवराज॥

तीरथ-व्रत-साधन कहा! जो निसि-दिन हरिगान।
तीरथ-व्रत साधन कहा बिनु निसि दिन हरिगान॥

पदावृत्ति में—

उड़ि गुलाल की लाल धुँधरि में झलकै बेंदा माल।
सखलिाल और लाल बिहारिन रसिक बिहारीलाल॥

* श्रुत्यनुप्रास—

जहाँ तालुकण्ठ इत्यादि से उच्चरित होने वाले व्यञ्जनों अर्थात् एक स्थानोत्पन्न वर्णों की समता पाई जावे उसे 'श्रुत्यनुप्रास' कहते हैं।

जयति द्वारकाधीस जय जय सन्तन-सन्ताप हर।

में 'द' 'स' 'न' 'त' इत्यादि दन्त्य अक्षर हैं।

'तेहि निसि में सीता पहँ जाई, त्रिजटा कहि सब कथा बुझाई।"

---

* जहाँ तालु कण्ठादि के व्यंजन समता जोग।

इस पद्य में त न स तथा प्र स क दन्त्याक्षर हैं अतः श्रुत्यनुप्रास हुआ।

'उभय भाँति देखा निज मरना।'

में उ, भ, म, ओष्ठ्य हैं तथा द न न दन्त्य हैं।

अन्त्यानुप्रास—

प्रत्येक छंद के चरणों के अन्त्याक्षर को तुकान्त कहते हैं। इसी अन्त्याक्षर का नाम अन्त्यानुप्रास है। भाषा में तुकान्त्य पद्य के छः भेद किये गये हैं।

(१) सर्वान्त्य—चारों चरणों के अंत्य अक्षर एक हों; जैसे सवैया में।

(२) समान्त्य, विषमान्त्य—जिनके सम से सम तथा विषम से विषम मिलते हों; जैसेः—

जेहि सुमिरत सिधि होय गन नायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय बुद्धि राशि शुभ गुन सदन॥

(३) समान्त्य-जिनके केवल समान्त्य मिलते हों; (जैसे दोहा में)

(४) विषमान्त्य-जिनका पहिले और तीसरे पद का अन्त्य मिले; (जैसे सोरठा में)

(५) सम विषमान्त्य जिसका पहिले दूसरे पद का अन्त्य मिले तथा तीसरे चौथे पद का अन्त्य मिले। (दो चौपाई)

(६) अतुकान्त-कोई चरणान्त्य न मिले।

व्यंजन स्वर युत एक से जो पदान्त में होय।
सो अन्त्यानुप्रास है अरु तुकान्त सो होय॥

यमक

भिन्न २ अर्थ वाले अथवा बिना अर्थ वाले सुनने में ए से पद-खंड, पद वा पद-समूह दो वा कई बार आवें तो 'यमकालंकार' होता है; जैसे—

"बन्दत अनन्द कंद कीरत अमंद चन्द
दरन कुफंद बन्द धायक कुमति के।
सिद्ध बुद्धिदायक विनायक सकल लोक
सोहैं सब लायक ज्यों दायक सुमति के।
कोमल अमल अति अरुन सरोज भोज
लज्जित मनोज बरदानि शुभ गति के।
विपन हरन मुद मंगल करनहार
असरन सरन चरन गनपति के।"

पहले पाद में 'अन्द' की आवृत्ति, दूसरे पाद में 'यद' की आवृत्ति, तीसरे में 'मल' की और चौथे पाद में 'रन' की आवृत्ति से यमकालंकार है।

और भी—

१—मानसरोवर आपने, मानस[1] मानस[2] माहिं।
मानस[3] हरि के मीन को, मानस[4] बरने ताहि॥

२—सारंग[5] ने सारंग[6] गह्यो, सारंग[7] बोल्यो आय।
जो सारंग[8] मुख ते कहै, सारंग[9] निकस्यो जाय॥

---

१ मन को २ मन में ३ मन सहित ४ मनुष्य ५ मोर ६ [illegible] ७ बादल ८ शोर ९ साँप।

३—सारंग[1] हित सारंग[2] तट सजनी भूलि न कबहूँ जेहै ।

४ कवित्त—ऊँचे घोर मन्दर[3] के अन्दर रहन वारी ऊँचे घोर *मन्दर[4] के अन्दर रहाती हैं । कन्दमूल[5] भोग करें कन्दमूल[6] भोग करें तीन बेर[7] खाती सो तो तीन[8] बेर खाती हैं । भूषन शिथिल अंग[9] भूषन शिथिल[10] अंग विजन[11] डुलाती तेतौ विजन[12] डुलाती हैं । भूषण भनत शिवराज वीर तेरे त्रास, नगन[13] जड़ाती वे तो नगन[14] जड़ाती हैं ।*

५ कवित्त—आनन[15] की उपमाको[16] आनन को चाहे, तऊ *आन[17] न मिलेगी चतुरानन विचारे को । कुसम-कमान[18] कमान को गुमान गयो करि अनुमान मोह रूप अति प्यारे को । गिरधर दास दोऊ देखि नैन-वारिजात[19] वारिजात[20] वारिजात[21] मानसरवारे को । राधिका को रूप देखि राति को लजात रूप जातरूप[22] जातरूप[23] जातरूप[24] वारे को ।*

पहली कड़ी में आनन की दूसरी में मान की तीसरी में वारिजात चौथी में जात-रूप की आवृत्ति से चारों पादों में "यमकालंकार" है ।

---

१ कमल फूल २ सरोवर ३ घर ४ पहाड़ ५ मिष्ठान्न ६ जड़ इत्यादि ७ तीन बार ८ तीन बेर (फल) ९ गहने १० भूखोंसे ११ पंखा १२ निर्जन वन १३ नगों से शोभित होती थीं १४ उघारी जाड़ा खाती हैं ।

१५ मुंह १६ दूसरे मुंह १७ और १८ कामदेव १९ कमलसे नैन २० जल जाता है । २१ कमल २२ सोने से रूप वाले की २३ स्वर्णकान्ति २४ नष्ट होजाती है ।

श्लेष

जहाँ एक ही पद या पद-समूह के दो या अधिक अर्थ निकलते हों वहाँ श्लेष[1] शब्दालंकार होता है।

इसके मुख्यतर दो भेद होते हैं-शब्दश्लेष और अर्थ श्लेष-कवि का जब अनेक अर्थों में से एक मुख्य अर्थ से तात्पर्य होता है तो शब्दालंकार होता है। परन्तु जहाँ अनेक अर्थ लक्ष्य हों वहाँ अर्थालंकार होता है, जैसे—

"बल प्रताप बीरता बड़ाई, नाक पिनाकहिं संग सिधाई" ॥

यहां 'नाक' पद के दो अर्थ हैं; नाक और लज्जा।

"शेष अमरेश औ गनेश पार पावे नाहि,
जाके पद देखि देखि आनँद लियो करें।
अच्छर है मूल फेरि व्यक्त औ अव्यक्त भेद,
ताही के सहाय सब उपमा दियो करें।
अव्यय है संज्ञा तीनों काल में अमोघ किया,
याके रस लीन होय पीयूष पियो करें।
रचना रचावे तिहि भाँति सों मुरारीदास,
ऐसे शब्द ईश्वर को मनन कियो करें"।

इसके दो अर्थ लक्ष्य हैं—एक ईश्वर पक्ष में दूसरा शब्दशास्त्र पक्षमें—

ईश्वर पक्ष में—शेषादिक ईश्वर के पदों (चरणों) को देखकर आनन्द प्राप्त करते हैं, अविनाशी हैं, साकार

---

१ अनेकार्थक पद श्लिष्ट कहाता है बिना खण्ड के कई अर्थ निकले वह अभङ्ग और खण्ड करके सभङ्ग।

नेराकार हैं, सम्पूर्ण उपमानों का उपमेय हैं, उनकी संज्ञा (नाम) मव्यय (न बीतने वाला) है तीनों कालों में है। उनकी क्रेया अमोघ (अव्यर्थ) है। भक्तप्रेमामृत पीते हैं, भाँति भाँति की रचना (सृष्टि) रचता है। योगी शब्देश्वर (भगवान) का ध्यान करते हैं।

शब्द शास्त्रपक्ष में-शेषादि पार नहीं पाते (अगम्य है) पदों को देखकर आनंद पाते हैं। अक्षर जिसकी मूल हैं, वाह्य और भीतरी दो प्रकार के अर्थ रखने वाला, जिस के लिये सब उपमा दी जाती हैं, अव्यय, संज्ञा काल क्रिया से युक्त, पंडितगण नव रसामृत पिया करते हैं, अनेक प्रकार की गद्य पद्यात्मक रचना का कारण है, ऐसे शब्द-शास्त्र को भाषा-प्रेमी मनन किया करते हैं।

बहुरि सकसम बिनवों तेही, संतन सुरानीक हित नेही।

यहाँ सुरानीक में श्लेष है देव पक्ष में सुर + अनीक और खल पक्ष में सुरा + नीक ऐसे श्लेष जिन के खंड कर के अर्थ लेया जाय सभंग हैं।

वीप्सालङ्कार।

जहाँ आश्चर्य, घृणा, आदर आदि आकस्मिक भाव प्रकट करने के हेतु एक शब्द कई बार कहा जाय।

आश्चर्य—*राम ! राम !! यह क्या नई बात है।*

घृणा—*राम ! राम !!* ऐसा न करो !!!

आदर—*राम कहि, राम कहि, सार है यही।*

ताकीद—*राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।*

भय—*त्राहि त्राहि काहि आगे काके पाँय परते।*

प्रहेलिका।

कुछ परिवर्तन करने से या यों ही उसी प्रश्न में से उत्तर निकले उसे प्रहेलिका कहते हैं।

१–बारे से यह सबको भावे। बढ़ा हुआ कुछ काम न आवे।
मैं कह दिया उसका नाम। अर्थ करो के छाड़ो गाम। (दीया)

२–चहुँओर फिर आई। जिन देखी तिन खाई।   (खाई)

पुनरुक्ति प्रकाश।

अर्थ की रोचकता अधिक करने के लिये कहीं २ एक ही शब्द का कई बार कथन हो वहीं पुनरुक्ति प्रकाश होता है।

दाढ़ी ही पर बहि बहि आवत क्यों तमाखू जो फाकन (प्र० ना० मिश्र)

यहाँ बहि बहि दोबार आया है।

१–"रीझि रीझि तेरे पद छवि पै तिलोचन के
लोचन ये अम्ब धारें केतिक धरनि को"

२–"घनश्याम प्रभा लखि के सजनी
अखियाँ सुख पाइ हैं पाइ हैं पाइ हैं।"

३—प्रात भये सब भूप बनि बनि मण्डप में गये।
जहाँ रूप अनरूप ठौर ठौर सब शोभिजे॥

यहाँ रीझि रीझि में, पाइये पाइये में, बनि बनि में और ठौर ठौर में पुनरुक्ति प्रकाश अलङ्कार है।

वक्रोक्ति।

कोई मनुष्य किसी बात को और मतलब से कहे परन्तु सुनने वाला कोई और ही अर्थ लगावे तब वक्रोक्ति अलङ्कार होता है। इसके दो भेद हैं:—श्लेष वक्रोक्ति (शब्दों के अर्थ भेद से) और काकु वक्रोक्ति (ध्वनि भेद से)

कहे हुए पद के टुकड़े करके वा योंही दूसरा अर्थ निकाल लिया जाय, वहाँ श्लेष वक्रोक्ति होती है; जैसे—

"को तुमहो ? इत आये कहाँ ? "घनश्याम" हो तो कितहूँ बरसो ।
'चित चोर' कहावत हैं हमतो तहाँ जाहु जहाँ घन है सरसो" ॥

राधा प्रश्न करती हैं 'दरवाजे पर कौन है ? 'घनश्याम', 'तो कहीं बरसा करो' ? यहाँ श्लेष से घनश्याम के दो अर्थ हैं, काले बादल और कृष्ण; आदि आदि

काकु विक्रोक्ति में केवल बोलने की ध्वनि से दूसरा अर्थ कर लिया जाता है:—

"गने जात हो साँवरे सब साधुन में साधु ।
सौंहै सौंहै खात कस तुम न कियो अपराधु ॥"

भाव यह स्पष्ट होता है कि तुम साधु नहीं हो ।

"मैं सुकुमारि ! नाथ वन जोगू !
तुमहिं उचित तप मोकहु भोगू !"

श्लेषहि के काकुसों और अरथ के माहिं ।
कलपन कीन्हें होत है वक्रोक्ति तेहि ठाहिं ॥ (पद्माभरण)

पुनरुक्तवदाभास

देखने में एक से अर्थ वाले भिन्न पद—पर वास्तव में एक अर्थ न हो—दो या अधिक बार आवें तो वहाँ यह अलङ्कार होता है:—

"अरिन के दल सैन संगर में सामुहाने,
टूक टूक सकल के डारे घमसान हैं।
बार बार रूरो महानद परवाह पूरो,
बहत है हाथिन के मद जल दान में।
भूतन भनत महाबाहु भोंसला भुआल,
सूर रवि को सो तेज तीखन कृपान में।
माल मकरन्द जू के नन्द कला निधि तेरो,
सरजा शिवाजी जस जगत जहान में॥"

देखने में दल और सैन, सूर और रवि तथा जगत और जहान एक से अर्थ वाले हैं, पर यहाँ सैन का अर्थ सयन, सूर का अर्थ योधा और जगत का अर्थ जागता है, अतः पुनरुक्तवदाभास है।

चित्र काव्य

इसमें पदों के एक विशेष प्रकार से स्थापित करने से कामधेनु, खड्गबंध, कमलबंध और छत्रबंध आदि अनेक चित्र बनते हैं।

अर्थालङ्कार

जहाँ पर शाब्दिक चमत्कार न हो वरन् अर्थ-सम्बन्धी-चमत्कार अर्थात् एक पद निकाल कर उसी अर्थ वाला दूसरा पद रखने पर भी चमत्कार रहे, वहाँ " अर्थालङ्कार " होता है।

अर्थालङ्कारों में उपमा प्रधान अलङ्कार है और अन्य कई अलंकारों का कारण भी है अतः प्रथम उसी का वर्णन करते हैं:—

उपमा

एक से धर्म, स्वभाव, शोभा तथा दशा वाले दो पदार्थों की तुलना की जाती है, वहाँ उपमालंकार होता है। उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं। उपमेय जिसको किसी अन्य लोक प्रसिद्ध वस्तु से समता देते हैं; 'उपमान' जिस वस्तु से उपमेय को समता दी जाती है, जो उपमान और उपमेय दोनों में एकसा गुण हो वह दोनों का 'सामान्य धर्म' कहलाता है जिस "समान" आदि शब्द से समता के भाव का भान हो उसे "उपमा वाचक" शब्द कहते हैं।

जैसे— 'घोड़ा बिजली के समान तेज चलता है'—यहाँ पर 'घोड़ा' उपमेय है क्योंकि उसका वर्णन करते हैं, बिजली की तेज चाल लोक में प्रसिद्ध है इसलिये घोड़े की चाल की तेजी बताने को बिजली के बराबर दिखा दिया, अतएव 'बिजली' उपमान है; 'तेज चलता है' गुण, बिजली और घोड़े दोनों में है, अतः यह सामान्य धर्म है और 'समान' उपमाद्योतक पद है, क्योंकि बिजली और घोड़े की चाल की समता का सम्बन्ध दिखाता है।

उपमा दो प्रकार की होती है एक 'श्रौती' दूसरी 'आर्थी' जहाँ पर 'तुल्य', 'समान,,'सम' 'सदृश' उपमा-वाचक शब्द हों

वहाँ आर्थी उपमा होगी और जहाँ-'यथा', 'ज्यों', 'जैसे', 'इव', 'सी', 'से', 'सों' और 'लों' इत्यादि पद उपमा के द्योतक हों वहाँ श्रौती उपमा होगी।

पूर्णोपमा

"फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे।
दौरि आये भौंर से गुनी-जन करत गान,
सिद्ध से सुजान सुखसागर सों नियरे।
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के जियरे।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज,
भोर के से नखत नरिन्द भये पियरे।"

उपमेय	उपमान	साधारण धर्म	उपमा वाचक पद
नैन	कमल	फूलि उठे	से
गुनीजन	भौंर	दौरि आये	से
सुजान	सिद्ध	सुखसागर सों नियरे	से
सुमति	सुरभी	खुलन लागी	सी
चिन्ता	चिरिया	जागी	सी
राम	रवि	लसत	से
नरेन्द्र	भोर के नखत्र पियरे		से

इस छन्द में ७ उपमाएँ हैं। हरएक उपमा के चारों अङ्ग

सो श्रौती शब्दहिं सुनत जहँ वाचक को ज्ञान।
अर्थ निरूपै आरथी द्वै विधि उपमा मान॥ (पद्माभरण)

प्रत्यक्ष कथन किये गये हैं अतएव पूर्णोपमा है; सी और से श्रौती उपमा के चिह्न हैं इसलिये इस छन्द में ८ श्रौती पूर्णोपमा अलंकार हैं।

"फूले कंज समान मञ्जु-दृगता थी मत्तता कारिणी।
सोने सी कमनीय-कान्ति तनकी थी दृष्टि उन्मेषिनी॥
राधा की मुसुकानि की मधुरता थी मुग्धता-मूरिसी।
काली-कुंचित-लम्बमान अलकें थीं मानसोन्मादिनी॥" ॥१॥

इसमें उपमेय,	उपमान,	साधारण धर्म	उपमावाचक
मंजुदृगता	फूलेकंज	मत्तताकारिणी,	समान
कमनीय-कान्ति,	सोने,	दृष्टि उन्मेषिनी,	सी

"सुखित-सज्जित शोभन स्वर्गसा,
सदन श्रीवृषभानुकुमारि का।
तुरत ही दुख के लवलेश से,
मलिन शोक समन्वित होगया॥"

इसमें सदन उपमेय, स्वर्ग उपमान, सुखित सज्जित शोभन, साधारण धर्म, और सा उपमा वाचक शब्द हैं, चारों अंगों के होने से यह भी पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा

ऊपर कहा गया है कि जिस उपमा में उपमा के चारों अंग स्पष्ट कहे गये हों वह पूर्णोपमा है। यदि उपमा के एक, दो अथवा तीन अंग लुप्त हों तो वह लुप्तोपमा कहलाती है। जो अंग लुप्त होते हैं उन्हीं को लुप्तोपमा के पहले जोड़ देने से उस

लुप्तोपमा का पूरा नाम हो जाता है, जैसे धर्म लुप्त हो तो "धर्म लुप्तोपमा" और वाचक और धर्म लुप्त हो तो "वाचक-धर्म लुप्तोपमा" यदि उपमान लुप्त "हो तो उपमान लुप्ता" आदि आदि।

धर्म लुप्ता

"प्रति दिन जिसको मैं अंक में नाथ लेके,
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी।
अति प्रिय जिसका है वस्त्र-पीला-निराला,
वह किशलय कैसे अंग वाला कहाँ है।।"

अंग उपमेय, किशलय उपमान और से उपमा वाच शब्द, सुन्दर साधारण धर्म लुप्त है; पूरी उपमा यह हो 'किशलय के से सुन्दर अंग।'

वाचक धर्म लुप्ता

"दोनों प्यारे कुँवर वर के जो विदा माँगते ही।
रोके आँसू जननि दृग में एक ही साथ आये।।
धीरे बोली परम दुख से जीवनाधार जाओ।
दोनों भैया मुखशशि हमें लौट आके दिखाओ।।"

इसमें मुख उपमेय और शशि उपमान है। धर्म और वाचक दोनों लुप्त हैं।

उपमान धर्म लुप्ता

"पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निश दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।।

उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला ।
वह नव नलिनी से नैन वाला कहाँ है ॥१॥"

यहाँ 'से' उपमा वाचक, 'नैन' उपमेय, है और उपमान 'नलिनी' नहीं हो सकती, नलिनी के पुष्प होते हैं; इसलिये उपमान और धर्मलुप्त हैं।

इस प्रकार धर्म, उपमान, वाचक, वाचक-धर्म, धर्म-उपमान, वाचक-उपमेय, वाचक-उपमान, वाचक-धर्म-उपमान, लुप्त होने से लुप्तोपमा के ८ भेद होते हैं। (किन्तु पद्माकर जी ने १५ भेद लुप्तोपमा के कहे हैं)*

'मृग-नयनी' उपमा में पूरा पद इस प्रकार होगा।

मृगी के नेत्र के समान हैं चञ्चल नेत्र जिसके, इसमें 'चञ्चल' साधारण धर्म; 'समान' वाचक शब्द; मृगी के 'नेत्र' उपमान लुप्त है, मृग उपमान नहीं हो सकता।

---

* इक द्वै तीनरु चार को जहाँ लोप पहिचान।
यों सु पंचदश भेद युत लुप्तोपमा प्रमान॥
वाचक लुप्ता यों समुझ "भख चख चंचल चारु।"
कहीं धर्म लुप्ता सु यों "शशि सौ बदन निहारु॥"
धुधरम वाचक लुप्त हैं कञ्ज दृगन लखि लेहु।
उपमान रु उपमेय विनु "शुक सी सुन्दर येहु॥"
उपमान लुप्ता गनहु "गज सम गमन सुमंद।"
उपमेयहु लुप्ता यहै "अति उत्तम ज्यों चन्द॥"
उपमान रु वाचक लुप्त "मधुर कोकिलालाप॥"
उपमेयहु और धर्म बिनु "कमल दला समान॥"
वाचक अरु उपमेय लुप "भरत पपता देख।"
उपमानहु अरु धर्मबिनु "गज सी गति अवरेख॥" (पद्माभरण)

3028

×मालोपमा (माला, पंक्ति)

जहाँ एक ही उपमेय के बहुत से उपमान हों वहाँ मालोपमा होती है जैसे—उसका वदन कमल के समान सुन्दर, फूल के समान कोमल और चन्द्रमा के समान उज्वल है। इसके दो भेद हैं:—समान धर्मा और असमान धर्मा।

समान धर्मा —

१—"वैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि शश चहै नाग-अरि भागू। जिमि चह कुशल अकारण कोही। सुख सम्पदा चहै शिव-द्रोही। लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई। हरि-पद-विमुख परम-गति चाहा। तिमि तुम्हार लालच नरनाहा॥

यहाँ राजा के लालच की समता कई असम्भव बातों से की है

"सक्र जिमि शैल पर, अर्क तम फैल पर, विघन की रैल पर लम्बोदर देखिये। राम दशकंध पर, भीम जरासंध पर, भूषण

उपमान रु वाचक धरम रहित सुनहु "विद्वान्।"
उपमेयहु वाचक धरम लुप्त "वक्ता" मान॥
वाचक अरु उपमेयहु उपमानहु को लोप।
समुझ "मधुर मृदु" कहलिया कीन्हों तेहि पै कोप॥
उपमेयहु उपमान अरु धर्म लुप्त इक जान।
किय प्रनाम उनो सु रिस समुझे भानु "समान"॥
पूरन लुप्ता है यहाँ जहाँ चहुन को लोप।
जाहि निरखि मुख भेद हुव ताहि लखहु करि चोप॥ (पद्माभरण)
× मालोपम उपमेयहक ताके बहु उपमान।
कंज विधुव मयूख सो इक तुव वदन बिधान॥ (पद्माभरण)

ज्यों सिंधु पर कुंभज विशेखिये । हर ज्यों अनंग पर, गरुड़ भुजंग पर, कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिये । बाज ज्यों विहंग पर, सिंह ज्यों मतंग पर, म्लेच्छ चतुरंग पर शिवराज देखिये ।"

भिन्नधर्मा मालोपमा ।

१—"बन्दों खलजस शेष सरोषा । सहसबदन बरनै पर दोषा ॥
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना । पर अघ सुनहिं सहसदस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही । संतत सुरानीक हित जेही ॥

२—"मुखरित करता था सदा को वह सुकों सा ।
कलरव करता था जो खगों सा बनों में ॥
सुध्वनित पिक लों जो वाटिका था बनाता ।
वह बहु-विधि कंठों का हा विधाता कहाँ है ?" ॥

* रसनोपमा

जहाँ उपमेय क्रम से एक दूसरे के उपमान होते चले जाँय वहाँ रसनोपमा होती है:—

"सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु उद्यम सम फल जान ।
फल समान पुनि दान है दान सरिस सनमान ।।"

यहाँ पूर्व उपमान उत्तर का उपमेय होता जाता है ।

---

* रसनोपम उपमेय जहँ होत जात उपमान ।
सुभ सरूप के सम सुमति सुमति सरिस गुन ज्ञान ॥ (पद्माभरण)
१ अ० प्र०

*उपमेयोपमा

जहाँ पर उपमेय, उपमान एक दूसरे के आपसमें उपमान उपमेय कथन किये जाँय; जैसे:—

(१) *"तो मुख पंकज तुल्य है, पंकज तो मुख तुल्य"*

(२) *"कामिनि दामिनि सी भई, दामिनि कामिनि आदि"*

(३) *"वे तुमसे तुम उन सम स्वामी"*

(४) *"तू रम्भा सी रूप में तो सी रम्भा नारि"*

+अनन्वय

जहाँ एकही वस्तु में उपमान और उपमेय दोनों हों जैसे:—

(१) *"माता तेरे सम जग में तूही होती है"*

(२) *"धर्म धर्म ही है"*

(३) *"जितने गुण सागर नागर हैं।*
कहते यह बात उजागर हैं॥
अब यद्यपि दुर्लभ आरत है।
पर भारत के सम भारत है॥"

---

* "उपमा लागे परसपर सो उपमा उपमेय।
खञ्जन है तव नयन से तव दृग खञ्जन सेय॥

\+ "उपमानोपमेय ही कहत अनन्वय ताहि॥" (भाषभूषण)

× ललितोपमा

उपमेय और उपमान की समता जहाँ उपमावाची शब्दों द्वारा न बताकर पदलालित्य द्वारा समता, निंदा, ईर्षादि भाव सूचन किये जावें वहाँ ललितोपमा होती है।

"साहि तनै सरजा शिवा की सभा जामधि है मेरु वारी सुरकी सभा को निदरति है। भूषण भनत जाके एक २ सिखर तें केते धौं नदी नद की रेल उतराति है। जोन्ह को हँसति जोति हीरामनि मंदिरन कंदरन में छवि कुहू की उछराति है। ऐसो उचो दुरग महाबली को जामें नसतावाली सों बहस दीपावली कराति है"

❁ प्रतीप (प्रतिकूल)

जहाँ उपमेय को उपमान मानकर दोनों की समता दिखावें वहाँ पहला 'प्रतीप' होता है। यह उपमालङ्कार का उलटा है:—

उदाहरण

"संध्या फूली परम-प्रिय की कान्ति सी है दिखाती।
मैं पाती हूँ रजनि-तनको श्याम के रंग डूबा ॥
उषा आती प्रति दिवस है प्रीति से रंजिता हो।
पाया जाता वर-बदन सा ओप आदित्य में है ॥"

× वहँ समता को दुहुन की लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत ॥ (भूषण)

❁ "या विधि प्रथम प्रतीप बखान, उपमै को कीजे उपमान" (पद्मा०)

यहाँ संध्या, रजनी, आदित्य आदि प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय मानकर, उपमेय, श्रीकृष्ण के अंगों को उपमान मानकर समता की गई है, इसलिये पहिला प्रतीप है।

"मुख सों शोभित सरद शशी कमल सुलोचन सेय"

यहाँ पर शरद-शशि और कमल प्रसिद्ध उपमान उपमेय मान लिये गये हैं और मुख और नेत्र उपमान हैं अतः प्रथम प्रतीप हुआ।

द्वितीय प्रतीप। ×

जहाँ उपमेय का उपमान से अनादर किया जाय वहाँ द्वितीय प्रतीप होता है:—

जैसे—कान्ते! तू अपने मुख-सौन्दर्य का क्यों गर्व करती है! उसके समान चन्द्र, कमल इत्यादि बहुत सी वस्तुयें हैं।

"प्रकृति-माधुरी पर कहा, गर्व तोहि कसमीर।
नन्दन बन तो सम अहै, सोहत परम गँभीर॥

"नैन तजहु तुम निज गरब यों बहु खञ्जन गोत"

तृतीय प्रतीप ۞

जहाँ वर्ण्य उपमेय के पक्ष से अन्य उपमान का अनादर हो, अथवा उपमान का उपमेय से अनादर होय; वहाँ 'तृतीय प्रतीप' होता है जैसे—

× उपमेय को उपमा सों बरनत जहाँ अनादर जानी।
ताहि प्रतीप दूसरी कहिये चतुर सबै पहिचानी॥ (अलंकार दर्पण)

● वर्ण्य वस्तु वर्ण्य हो दूसरे को अनादरै सो तीसरो, प्रतीप कवि इमि कहते है। ([illegible])

"रसि करें का बापुरे अधरन की फल बिम्ब।
साधि रहे निज नाम को इन ही के अवलम्ब ॥"

बिम्ब उपमान का उपमेय अधरन से अनादर किया गया है।

"पाहन जिय जनि गर्व करि हों ही कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये तोसे लाख हजार ॥"

(अलंकार प्रकाश)

यहाँ उपमान 'पाहन के गर्व' को दुर्जनों के चित्त को उपमेय मान नष्ट किया है

"कोयल अपने वचन कों काहे करति गुमान।
मधुर वचन वनितान के तेरे वचन समान ॥"

उसमें वनितान के मधुर वचन उपमेय से कोयल के मधुर वचन उपमान का अनादर हुआ।

"सछबि गरब मति करु कमल यों वनितन के नयन"

* चतुर्थ प्रतीप

जहाँ उपमान को उपमेय के अयोग्य सिद्ध किया जाय अर्थात् उपमेय से उपमान का अनादर हो।

"छीराधि में पंक कलानिधि में कलंक याते
रूप इक टंक ये लहै न तव जसके"

"तुव मुख सों सुंदर ससिहि क्या भाषै कवि गोत।"

यहाँ उपमेय मुख के तुल्य उपमान चन्द्र नहीं है।

---

* भन आदर उपमेय तें जब पावै उपमान।
तीक्ष्ण नैन कटाक्ष तें मन्द काम के बान ॥ (भाषा भूषण)
उपमे जोग न उपमा होय। यह प्रतीप है चौथो सोय ॥ (अलंकार दर्पण)

*पञ्चम प्रतीप

"उपमान के सब कर्मों का करने वाला ही उपमेय है" ऐसा कह कर उपमान की अनावश्यकता दिखलाई जाय अर्थात् उपमेय के आगे उपमान व्यर्थ समझा जाय वहाँ पञ्चम प्रतीप होता है।

"अमिय झरत चहुँ ओर ते नयन ताप हर लेत।
राधा जू को बदन यह चन्द उदय केहि हेत॥"

यहाँ राधाजी के वदन के सामने चन्द्रमा व्यर्थ ठहराया है।

"अमर होय नर नाम सुधाते फेरि सुधा को काम कहा।"

मनुष्य का नाम (यश) रूपी सुधा से अमर होजाने की स्थिति में अमृत की अनावश्यकता दिखलाई है; अतः पञ्चम प्रतीप हुआ।

आभा-तुव-मुख-चंद लखि फीको चंद लखात।
कारज अब जाको कहा क्यों न वेगि छिपि जात॥

†रूपक (समता)

जहाँ उपमेय और उपमान का एक रूप ही कथन किया जाय भिन्नता का कोई भाव न हो वहाँ 'रूपक' अलंकार होता है।

रूपक दो प्रकार का होता है:—अभेद रूपक और ताद्रूप

---

* व्यर्थ होय उपमान जब उपमे को लखि सार।
तब आगे गुण कछु न वै पंच प्रतीप प्रकार॥ (भाषा भूषण)

† उपमेय रु उपमान मिलि एक रूप है जाहिं।
तब रूपक को रूप है समुझि लेहु मन माहिं॥ (अलंकार दर्पण)

अभेद-रूपक

उपमालङ्कार में उपमेय के गुण, कर्म, स्वभाव, क्रिया आदि को उपमान के गुण, कर्म, स्वभाव और क्रिया के समान कथन किया जाता है अर्थात् दोनों एक धर्म वाले कथन किये जाते हैं, परन्तु अभेद-रूपक में उपमान का उपमेय में निषेध रहित अभेद आरोप ही वर्णन किया जाता है; जैसे—

"*प्रभु रुत दोरी विनय बहु भाषी, चले हृदय पद-पंकज राखी*"

यहाँ पंकज का पदों में अभेद आरोप है वास्तव में पंकज ही पद नहीं है।

प्रत्येक रूपक तीन प्रकार का होता है:—सम-अभेद, अधिक-अभेद और न्यून-अभेद।

जब उपमान और उपमेय को तुल्य (एकसा) मान कर अभेद किया जाय तब उसे 'सम-अभेद-रूपक' कहते हैं, इसके तीन भेद हैं:—सावयव, निरवयव, और परम्परित।

सावयव-सम-अभेद-रूपक

जिसमें उपमान के समस्त अंगों का उपमेय के समस्त अंगों में अभेद किया गया हो, इसके दो भेद हैं:—(१) समस्त वस्तु-विषयक (२) एक देश विवर्ति।

"*मौरन मौर मनोहर मौलि अमोल हरा हिय मोतिया भायो।*
नूतन पल्लव साजि झँगा पटुका कटि सोनजुही छवि छायो॥
कोकिल गायक भौंर बराती चढ्यो पवमान तुरंग सुहायो।
चाप उछाह दिगंतन राम ललाम बसंत बना बनि आयो॥"

---

*इक लगत अभेद ।
अधिक न्यून ।"(अलंकार दोष)

यहाँ बसन्त उपमेय के साथ अंग मौर, मोतिया, पन्नग, मोन जुही, कोयल, भौंर, पवन में क्रम से उपमान दूल्ह के मौर, हार, मंगा, पट्टुका, गायक, बराती घोड़ादि सब अंगों का अभेद आरोप है।

"नीलाम्बर-परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे-मण्डल हैं।
बन्दीजन खगवृन्द शेष-फन सिंहासन है॥
करते अभिषेक पयोधि हैं बलिहारी इस वेष की।
हे मातृ-भूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥"

यहाँ पर 'मातृ-भूमि' उपमेय है और 'सर्वेशकी मूर्ति' उपमान है, 'नीलाम्बर परिधान' आदि उपमा उपमेय के उपाङ्ग हैं इन सब का सादृश्य कथन है।

यह दोनों उदाहरण समस्त-वस्तु-विषयक रूपकके हैं; एकदेश विवर्ति में कुछ अंगों का स्पष्ट कथन करके कुछ अर्थ से जाने जाते हैं; जैसे:—

"भूप-मनोरथ सुभग बन सुख सुविहंग-समाज।
भिल्लनि जनु छोड़न चहति वचन भयंकर बाज॥"

यहाँ भूप-मनोरथ को बन, सुख को पक्षी-समाज तथा कैकेयी के वचनों को बाज ठहरा कर स्पष्ट कथन किया है, पर भिल्लनि रूप कैकेयी का कथन नहीं किया है, वह अर्थ से जानी जाती है।

निरवयव-सम-अभेद-रूपक

बिना अगों के जब उपमेय में उपमान का आरोप हो वहाँ निरवयव-सम-अभेद-रूपक होता है।

इसके दो भेद हैं शुद्ध और मालाकार।

शुद्ध—एक उपमेय का एक उपमान में अंग रहित आरोप हो; जैसे:—

"*छिनु छिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जनु कोकी*"

यहाँ एक उपमेय 'पद' में एक उपमान 'कमल' का आरोप है, उनके अंगों का नहीं।

> "*अरिबिन्द-मन्द सों न सकति अमन्द पाई*
> *मातु-नख-चन्द की छटा ही चित्त भावती।*"

यहाँ पर नख में चन्द्रमा का बिना अंगों के कथन के अभेद है। यह "शुद्ध निरवयव-सम-अभेद रूपक" है क्योंकि एक उपमेय में एक ही उपमान का अभेद है और जहाँ पर एक उपमेय में अनेक उपमानों का आरोप हो वहाँ पर "मालाकार-निरवयव-सम-अभेद-रूपक" होता है; यथा:—

मालाकार निरवयव-सम अभेद रूपक

> *चिन्ता रूपी मलिन निशि की कौमुदी है अनूठी।*
> *मेरी जैसी मृतक बनती काज संजीवनी है॥*
> *आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मंदाकिनी है।*
> *नाना पीड़ा मथित तन के हेतु है शान्तिधारा॥*

यहाँ एक ही आशा उपमेय में अनेक उपमान कौमुदी; संजीवनी, शान्तिधारा और मन्दाकिनी का आरोप है।

"विधि के कमण्डलु की सिद्धि है प्रसिद्धि यही हरि-पद-पंकज-प्रताप की लहर है। कहै पद्माकर गिरीश-शीश-मण्डल के मुण्डन की माल तत्काल अघ हर है। भूपति भगीरथ के रथ की सु पुन्य-पथ जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है। छेम की छहर गंगा! रावरी लहर कलि-काल को कहर यम-जाल को जहर है।"

इसमें 'गंगा' एक ही उपमेय में अनेक उपमानों का आरोप किया गया है।

परंपरित रूपक (परंपरा-युक्त)

जहाँ एक उपमेय में किसी उपमान का आरोप दूसरे उपमेय में उसके उपमान के आरोप का हेतु हो अर्थात् एक उपमा का आरोप दूसरे उपमान के आरोप के किये बिना सिद्ध न। उसे 'परंपरित रूपक' कहते हैं।

परंपरित रूपक शुद्ध और मालाकार दो प्रकार का होता तथा श्लिष्ट और भिन्न शब्द होने से प्रत्येक के दो भेद जाते हैं।

"तुम बिन रघुकुल-कुमुद-विधु सुरपुर नरक समान",

यहाँ पर रघुकुल में कुमुद का आरोप किया है, वही राम चन्द्र में विधु के आरोप का हेतु है तथा 'विधु' 'कुमुद' आदि भिन्न शब्द हैं अतः "भिन्न शब्द शुद्ध परंपरित रूपक" है।

"सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला ।
दीनों का है परम धन औ वृद्ध का नैन तारा ॥
बालाओं का प्रिय-स्वजन औ बंधु है बालकों का ।
ले जाते हैं सुरतन कहाँ आप ऐसा हमारा ॥"

यहाँ सुरतन में कृष्ण के आरोप का वंश में गोपवंश का आरोप हेतु है। वंश शब्द श्लिष्ट है इसके बाँस और गोप-वंश दो अर्थ हैं। इसलिये पहिला भिन्न-शब्द तथा दूसरा श्लिष्ट-शब्द मालाकार का उदाहरण है।

"अंगद तुही बालि कर बालक। उपजेउ बंस अनल कुल घालक"

यहाँ बंस शब्द श्लिष्ट है जिसका अर्थ कुटुम्ब व बाँस दोनों है। अंगद में अग्नि का आरोप है। और यहाँ एक उपमेय में एक ही उपमान का आरोप है अतः 'श्लिष्ट-शुद्ध-परंपरित' हुआ।

"धरत जहाँ नँद-लाडिलो चरन-कमल-सुख-पुञ्ज।
भक्तन के दृग-भ्रमर है करत फिरत तहँ गुञ्ज ॥"

यहाँ चरणों में कमल का आरोप ही दृगों में भ्रमर के आरोप का हेतु है।

अधिक-अभेद-रूपक

उपमेय उपमान का अभेद होने पर उपमेय में कुछ अधिक गुण दिखाया जाय।

१—"मयंक है श्याम बिना कलंक का।"

चूँकि साधारण चन्द्रमा में कलंक है परन्तु श्याम बिना कलंक का चन्द्र है।

२—"वन्दत अनन्द कन्द कीरति अमन्द चन्द"

३—"रहै सदा विकसित विमल घरे
उपज्यो नहि पुनि कज ते राधे को

४—"धाता द्वारा सृजित जग हो मेदि
पाके खोया रतन कितने प्राणियों
जैसा प्यारा रतन ब्रज ने हाथ से
पाके ऐसा रतन अबलों है न खोया कि

यहाँ पर रत्न में कृष्ण का अभेद आरोप
'ऐसा प्यारा रत्न' पद सामान्य रत्नों से कृष्ण
षता दिखाता है।

न्यून-अभेद-रूपक

जहाँ अभेद होने पर भी उपमेय में उपमान
दिखाई जाय; जैसे:—

"श्री चन्द्रहास अवनी-तल चन्द्र ही है

यहाँ चन्द्रहास रूपी चन्द्रमा आकाश का चन्द्र
न्तु अवनी का चन्द्र है।

"ब्रह्मा चतुरानन रहित, है हरि बिनु-भुज-चा
महा महिम ये व्यास-मुनि सिव बिनु-नयन-लिलार।
(अलंकार प्रका

ताद्रूप्य रूपक

उपमेय में उपमान का अभेद न करके उससे पृथक् वैस
, गुण और कार्य वाला दूसरा बताया जाय
क' होता है प्रायः यह

१—"जाते जाते पहुँच मथुरा धाम में उत्सुका हो।
न्यारी शोभा नगर वर की देखना मुग्ध होना॥
तू होवेगी चकित लखके मेरु से मंदिरों को।
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क से हैं॥"

२—"अचल नरेस आप दूसरो दिनेस है"

यह "समतादूप्य-रूपक" है, न्यूनता और अधिकता से न्यून और अधिक ताद्रूप्य-रूपक होते हैं।

३—"जस ध्वज या ध्वज ते अधिक तीन लोक फहरात।
धर्म मित्र वह मित्र है मरत जियत सँग जात॥"

* परिणाम (प्रकृति का बदलना)

अभेद-रूपक में तो उपमान, उपमेय की सुन्दरता ही बढ़ाता है परन्तु परिणाम में अभेद होकर कोई काम करता है, यदि सम-अभेद रूपक के कथित उदाहरण में "मातु-नख-चन्द की छटा ही चित भावती" यहाँ 'भावती' पद के स्थान पर 'चोरती' जोड़ने से उस छंद में परिणाम अलंकार होता है। इसमें उपमान अकेला असमर्थ होने से कोई काम नहीं करता किन्तु उपमेय के साथ एक रूप होकर करता है।

"सारी सिर बैजनी में कंचन-बुटी की ओप मुकत-किनारी चहुँ ओरन लसत है। अरचौली जरत जरीकी जाफरानी पाग कोर में जमुरदी जवाहिर लसत है। रतन-सिंहासन पै दोने गलबाही मुसचन्द मुसक्यानि भव-ताप को हरत हैं। या विधि आनंद भरे राधा नन्द-चन्द सदा दम्पति चरण मेरे हिय में बसत हैं।"

* विषयी करै विषय है काम, अलंकार सो है परिनाम

यहाँ जीवन-रूपी-फूल का वर्णन है, परन्तु, 'जीवन' उपमेय 'फूल' उपमान में लीन है।

२—"नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार।
चहुँ दिसि अति भौंरे उठत केवट है मतवार॥
केवट है मतवार नाव मझधारे आनी।
आँधी उठी प्रचंड तेहिपर बरसत पानी॥
कह गिरधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया।
उठे दया को डाँड़ घाट पर आवे नैया॥"

यहाँ जीवन रूपी नैया के स्थान पर केवल नैया का कथन है।

३—कनक लतानि इन्दु, इन्दु माँहि अरिविन्दु,
झरैं अरिविन्दुनि तें बुन्द मकरन्द की।

यहाँ उपमेय सुंदरियों के मुख, नेत्र और आँसू 'विषय' का वर्णन न करके केवल 'विषयी' उपमानों का कथन है।

(२) भेदकातिशयोक्ति +

जहाँ यथार्थ में भेद न होने पर भी "और" "अन्य" आदि शब्दों से उपमेय में भेद कथन किया जाय; जैसे:—

१—"मुख सरवन दृग नासिका सब ही के इक ठौर।
कहिबो, सुनिबो, देखिबो चतुरन कहँ कछु और"॥

यहाँ पर यथार्थ भेद न होने पर भी भेद कथन किया है।

+ जो भेद औरै कहनि सों या ठौर बरनन कीजिये।
तब भेदकातिशयोक्ति नीके समुझि मन में लीजिये॥ ([illegible])

—"औरे हँसिबो देखिबो औरे याकी बात"

—"वह कविता औरे जु सुनि घूमत सुघर समाज"

सम्बंधातिशयोक्ति ॐ

जहाँ वास्तव में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध लगाया अथवा अयोग होने पर भी योग दिखाया जाय; जैसे—

"इस महल का कलश आकाश को छूता है"

आकाश को महल के छूने का अयोग होने पर भी योग कहा है। के दो भेद हैं:–(१) सम्भाव्यमाना जो 'जो' 'यदि' आदि शब्दों कथन की जाय। (२) निर्णीयमाना, निश्चित वर्णन।

जो छवि-सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई॥

ा रजु मंदर-शृङ्गारू। मथै पानि-पंकज निज मारू॥

एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।

छवि सुधा का समुद्र, रूप का कच्छप, शोभा की रस्सी, ार का मंदराचल तथा कामदेव के हाथों से मंथन इनका ोग होने पर भी योग दिखाया है—'यदि' शब्द कथन से संभाव्यमाना है यदि 'जो' 'यदि' शब्द नहीं तो निर्णीयमाना ंधातिशयोक्ति होगी।

—"जलद! गरज करु नाहिं सुनि मेरो मासिक गरभ

गुनि मन गज-धुनि ताहि उछलतु है मो उदर में"

(काव्यकल्पद्रुम)

"सम्बन्धातिशयोक्ति जहाँ देत अजोगहिं जोग।
या पुर के मंदिर करैं ससि लौं ऊँचे लोग॥" (भाषाभूषण)

२-"कवि कहहे भाति उन्न निसाना। जिन महँ भटकत वि

देवताओं के विमान बहुत ऊँचाई पर होने के कार
के उलझने का असम्बन्ध भी सम्बन्ध करके कथन है।

३-"जो सम्पदा नीच-गृह सोहा। सो विलोकि सुरनायक म

यहाँ नीच गृह की सम्पत्ति को देख कर इन्द्र का
होना अजोग में जोग है।

(४) असम्बन्धातिशयोक्ति ※

वास्तव में सम्बन्ध होने पर असम्बंध कथन किया जा
अथवा योग होने पर अयोग दिखाया जाय; जैसे:—

१—"जो सुखमा तिय मातु मन देखि राम वर मेष।
सो न सकहिं कहि कल्पसत सहस सारदा सेस॥

कहने का योग होने पर भी अयोग वर्णित है।

२—"अति सुन्दर लखि मुख तिय तेरो,
आदर हम न करत ससि केरो।'

यहाँ अति सुन्दर मुख देखकर वास्तव में आदरणीय चन्द्रमा
का आदर न करना योग में अयोग है।

३—"दायज अमित न जाय कहि दीन विदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक-सम्पदा थोरि॥"

※ अतिशयोक्ति हुजी यहै जोग अजोग बखान।
तो कर आगे कल्पतरु क्यों पावे सन्मान॥

यहाँ लोक-सम्पदा को भी दहेज की सम्पत्ति
ठहराया है, यह योग होने पर भी अयोग है।

(५) अक्रमातिशयोक्ति ❀

जहाँ पर कार्य और कारण का एक साथ ही कथन है, जैसेः—

१—*"रन-मध्य राम ऐसो कौतुक करत आज—*
बाननि के संग छूटे प्रान दनुजन के ॥"

यहाँ प्राण और बाणों का साथ छूटना दिखाया गया है।

२—*सन्धानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि-उर अन्तर-ज्वाला॥*

यहाँ बाण सन्धान और समुद्र से ज्वाला का उठना एक साथ कथित है।

(५) चपलातिशयोक्ति +

कारण के ज्ञान मात्र से ही कार्य उत्पन्न हो, जैसेः—

१—*"बन्दहुँ गुरुपद नख-मनि-जोती।*
सुमिरत दिव्य-दृष्टि हिय होती ॥"

यहाँ नख-मणियों के प्रकाश से नहीं वरन् स्मरण मात्र से ही कार्य रूप दिव्य-दृष्टि हो जाती है।

२—*"आयो आयो सुनत ही शिव सरजा तुवनाम।*
बैरि-नारि-दृग जलहि सौं, बूढि जात अरिगाम ॥"

❀ अतिशयोक्ति अक्रमउ सँग कारन काज बखान।
"कढ़त साथ ही म्यान ते असि रिपु-तन ते प्रान" (पद्माभरण)

+ चपलात्युक्ति जो हेतु के होत ज्ञान ही काज।
"कंकन ही भई मुँदरी पीव-गमन सुनि आज ॥" (भाषाभूषण)

३—"सघन सुनत रघुबंस-मनि, आवत सेन समेत।
निकट निपट निश्चर सुभट, तन मन भये अचेत॥"

यहाँ राम के आते ही राक्षस अचेत हो गये अर्थात् कारण के सुनते ही कार्य हो गया।

४—"विमल कथा कर कीन्ह अरम्भा। सुनत नसाय मोह मद दम्भा॥"

५—"तप सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयेउ जरि छारा॥"

(७) अत्यन्तातिशयोक्ति

जहाँ पर कारण से प्रथम ही कार्य कथन किया जाय; जैसे:—

१—"हनुमान की पूँछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरिगई गये निसाचर भाग॥"

यहाँ पूँछ में आग लगने से पहिले ही (जो लंका जलने का हेतु है) लंका जल गई।

"राजन राउर नाम-जस, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप-मनि, मन-अभिलाष तुम्हार॥"

यहाँ इच्छा से पहिले ही फल की प्राप्ति है।

"बान न पहुँचे अंग लौं, अरि पहिले गिर जाँय"

अक्रम, चपला और अत्यन्तातिशयोक्ति में कारण सम्बन्धी चमत्कार वर्णित है, अतः इन तीनों को मिलाकर कारणातिशयोक्ति कहते हैं।

"अत्यन्तातिसयोक्ति सो, पूर्वा पर क्रम नाहिं।
बान न पहुँचे अंग लौं, अरि पहिले गिर जाहिं॥ (भाषाभूषण)

(८) सापह्नव अतिशयोक्ति +

जहाँ रूपकातिशयोक्ति अपह्नव सहित हो वहाँ सापह्नवातिशयोक्ति होती है; जैसेः—

"अहि ससि-मंडल पै बसें जिय पताल जनि जान"

उत्प्रेक्षा *

जहाँ अन्य वस्तु, हेतु और फल में दूसरी वस्तु, हेतु और फल की संभावना करली जाय वहाँ "उत्प्रेक्षा" अलङ्कार होता है †

उपमालङ्कार में उपमेयोपमान की समता की जाती है रूपक में अभेद आरोप होता है परन्तु उत्प्रेक्षा में भेद सहित आरोप होता है; जैसे 'पद-पंकज' पद ही पंकज, रूपक; और पद मानों पंकज हैं, यह उत्प्रेक्षा अलंकार है। यह दो प्रकार का होता है वाच्या और प्रतीयमाना या गम्य, जहाँ 'मनु' 'मानहु' 'मानो' 'जानो' 'जनु' 'जानहु' 'इव' आदि पदों द्वारा संभावना हो वहाँ वाच्या और जहाँ उत्प्रेक्षावाचक शब्द न हों वहाँ प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है। इन दोनों उत्प्रेक्षाओं के तीन तीन भेद हैं; (१) 'वस्तूत्प्रेक्षा' (२) 'हेतूत्प्रेक्षा' और (३) 'फलोत्प्रेक्षा'; प्रत्येक के दो दो भेद और अन्तर्गत हैं।

वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ पर एक वस्तु में (उपमेय में) अन्य वस्तु की

\+ "सापह्नव गुन और के औरहिं पर ठहराय।
सुधा भरयो यह बदन तुव चन्द कहै बौराय॥" (भाषाभूषण)

† बिना चमत्कार के वाक्यमात्र में ही अलंकार नहीं होता।

* १ "उत्प्रेक्षा सम्भावना (१) वस्तु (२) हेतु (३) फल लेखि।
(१) "नैन मनौं अरविन्द हैं सरस बिसाल बिसेखि।"
(२) मनो चली आँगन कठिन ताते राते पाँय।
(३) तुव पद समता को कमल जल सेवत इक पाँय। (भाषाभूषण)

संभावना की जाय इसे स्वरूपोत्प्रेक्षा भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं, उक्तविषया—जिसका विषय कथन किया जाय, अनुक्त विषया—जिसका विषय कथन न किया जाय।

वाच्या उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा

१—"*लता-भवन ते प्रगट भये तेहि अवसर दोउ भाय।*
निकसे जनु जुग विमल बिधु जलद-पटल बिलगाय॥"

यहाँ लता-भवन से दोनों भाइयों का निकलना पहिले कहा गया है यह 'विषय उक्त है' फिर बादल से दो चन्द्रमाओं के निकलने की सम्भावना की गई है। इसी प्रकार :—

२—"*सोहत सुन्दर स्याम-सिर, मुकुट मनोहर जोर।*
मनो नीलमनि सैल पै नाचत राजत मोर॥"

जिसकी संभावना की जाय वह सम्भाव्यमान (विषयी) और जिसमें सम्भावना की जाय वह सम्भाव्य (विषय) कहलाता है, जहाँ दोनों हों वहाँ 'उक्त-विषया' और जहाँ सम्भाव्य न हो वहाँ अनुक्त-विषया उत्प्रेक्षा होती है।

३—*केसरि तिलक ललाट-पटल छबि परत पिरोरी।*
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेरी॥"

यहाँ पर ललाट-पटल पर केसर तिलक में सुन्दर कसौटी ऊपर सोने की रेखा की संभावना की गई है "केसर तिलक" उत्प्रेक्षा का विषय उक्त है, मनहुँ वाचक होने से 'वाच्या' है।

प्रतीयमाना उक्त विषया उत्प्रेक्षा

"*श्री मुख पर सित भलक भलक श्रम लव उँभारें।*
रहे ठेरि नव कंज मधुप सौरभ मतवारें॥"

यहाँ श्रीमुख पर अलक में मधुपावलित कंज की सम्भावना है, 'मनु' आदि वाचकों के अभाव में प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है।

× अनुक्त विषया वाच्या उत्प्रेक्षा

"मनहुँ चन्द यह उदित है बरसावत है आगि"

यहाँ विरहिणी सीताजी की उक्ति है, चन्द्रमा ने उदित होकर किरणों को फैला दिया वही मानों आग बरसाना है; यहाँ विषय "चन्द्र किरणों के फैलाने" का वर्णन नहीं है अतः अनुक्त-विषया 'मनहुँ' वाचक से वाच्या है।

हेतु उत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु में दूसरा हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय अर्थात् जो वास्तव में कारण न हो उसे कारण मान लिया जाय। इसके वाच्या और प्रतीयमाना दो भेद होते हैं। फिर दोनों के दो भेद कथित हैं:—

(१) सिद्ध विषया या सम्भाव्य–जिसका विषय संभव हो।

(२) असिद्ध विषया या असम्भाव्य–जिसका विषय असंभव हो।

* सिद्धविषया हेतु उत्प्रेक्षा

"कत दिखाय कामिनि दई दामिनि को यह बाँह।

याही ते मानों फिरै, फरफराति घन माँह॥

आकाश में बिजली थर्थराने का हेतु "कामिनी की बाँह दिखाना" मान लिया है जो सर्वथा अहेतु है, और आकाश में बिजली का फर्फराना संभव है इसलिये 'सिद्ध-विषया' है।

× "जानि वस्तु के मांहि होय आन सम्भावना।
विषय कहे जब नाहिं, सो अनुक्त-विषया कहे॥"

* "जब अहेतु में होय, करै हेतु सम्भावना।
विषय सिद्धि जहँ होय, ताहि 'सिद्धि-विषया' कहै"॥ (अलंकार दर्पण)

"चारु चरन-नरा सेरराति धरनी । नूपुर मुखुर मधुर कवि बरनी
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं । हमहिं सीय-पद जानि परिहरहीं"

यहाँ हिलने डुलने से नूपुरों की ध्वनि को प्रार्थना करते हुए सम्भावना की गई है। नूपुरों की ध्वनि सर्वथा सम्भव है प्रार्थना करना अहेतु में हेतु माना है, इसलिये सिद्धास्पदा है।

असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा

"बढ़त ताड़ को वृक्ष यह मनु चूमन आकाश"

यहाँ आकाश को ताड़ का चूमना असंभव है; अतः वाच्या असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा है।

"रवि अभाव लखि रैन में, दिन लखि चन्द विहीन ॥
सतत उदित यहि हेतु जनु यस-प्रताप मुवि कीन ॥"

यहाँ दिन में चन्द्रमा तथा रात्रि में सूर्य उदय न होने का हेतु यश और प्रताप का उदय होना सम्भावित किया गया है, अर्थात् अहेतु को हेतु माना है; परन्तु न तो दिन में चन्द्रमा उदय होता है और न रात्रि में सूर्य, अतः 'असिद्ध-विषय' हुआ अर्थात् यहाँ हेतूत्प्रेक्षा-असिद्ध-विषया हुई।

"इनहिं देखि विधि मनु अनुरागा । पटतर जोग बनावन लागा
कीन्ह बहुत स्रम एक न आये । तेहि ईर्षा बन आनि दुराये ॥

यहाँ राम लक्ष्मण की पटतर बनाने की ब्रह्मा की इच्छा होना, ऐसा न होने को भी होने की सम्भावना की है तथा न बनने पर इन्हें बन में लाकर छिपा दिया यह हेतु माना, इसलिये यह 'हेतूत्प्रेक्षा' हुई। इनमें से है एकभी बात नहीं, सब असम्भव हैं, इसलिये असिद्ध-विषया हुई।

फलोत्प्रेक्षा

वास्तव में जो फल न हो उसे फलभाव से कथन किया जाय। इसके भी हेतूत्प्रेक्षा की भाँति "सिद्ध विषया और असिद्ध विषया" नामक दो भेद हैं।

सिद्ध विषयाः—

"दवत नीर के भार सन गिरत रजहिं नित देख।

धारत गिरि निज शीश पर करि यह कृपा विशेष॥"

धूल की दुर्दशा देख, उसे पर्वतों को निज शिर पर धारण करना, फल रूप में कथन किया गया है।

"प्रबल घाम सन विन्ध्य कहँ तपत मेघ जनु जानि।

बार बार सुख देन हित अब बरसावत पानि॥"

असिद्ध विषयाः—

"निहचै इहि शम्भुचाप पाप के मिटाइबेकों,

राम कर तीर्थ पाय देह छाँड़ि दीनों है॥"

धनुष का टूटना राम के बल का कथन न कर धनुष के पाप मिटाने की कल्पना की है। जड़ धनुष से ऐसी कल्पना करना असिद्ध है।

सापन्हव उत्प्रेक्षा

अपन्हुति अर्थात् निषेधसूचक शब्द सहित जहाँ उत्प्रेक्षा हो वह "सापन्हव उत्प्रेक्षा" होती है। इसमें भी ऊपर कहे हुए सब भेद होते हैं:—

"दीन किसानन हेतु मनु, है सुर यह नर नाहिं"

सूचना—जहाँ मिस शब्द युक्त उत्प्रेक्षा हो वहाँ कैतवापन्हुति सहित उत्प्रेक्षा होगी।

⊙ व्याजस्तुति

जहँ पर निन्दा-गर्भित स्तुति की जाय अथवा
निन्दा के व्याज अथवा किसी की निन्दा-स्तुति से अन
होते हो वहाँ "व्याज-स्तुति अलङ्कार" होता है; जै

स्तुति में निन्दा:—

१—"चक्र क्षण बिनु मानिनि निहारी। छिमा कीन्हि तुम धर्म
२—"धन्य कीत जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहि परिहरि

निन्दा में स्तुति:—

१—"स्वर्ग चढ़ाये ते पतित, गंग कहा कहुँ तोय"
२—माधव आप सदा के कोरे।

दीन दुखी जो तुमको जाँचत सो दानिन के मोरे॥
किन्तु बात यह तव स्वभाव की नेकहु जानत नाहीं
सुनि सुनि सुजस रावरो तव ढिग आवन को ललचा
नाम धरे तुमको जग मोहन मोह न तुमको आवै।
करुणा निधि तव हृदय न एकहु करुनाबुन्द समावै॥
लेत एक को देत दूसरेहि दानी धनि जग मांही।
ऐसो एर फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाही॥

स्तुति निन्दा मिसहिं जौ बड़ाई होय...

३—जमुना तू अविवेकिनी कौन लियो यह ढंग।
पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग ॥

यहाँ श्री जमुनाजी की निन्दा कथन करके पापियों के उद्धार रूप जो प्रशंसा है वह झलकती है अतः निन्दा में स्तुति हुई।

किसी की स्तुति में अन्य की स्तुतिः—

१-"जासु दूत बल बरण न जाई। तेहि आये पुर कौन भलाई॥

२—"या वृन्दावन विपिन में बड़ भागी मम कान।
जिन मुरली की तानि सुनि किय हरसित अंग आन॥"

३—"उस कारीगर के लिये क्या कहा जाय
जिसने ये सुन्दर पुष्प खिलाये हैं"

किसी की निन्दा में अन्य की निन्दाः—

१—"जु हरि हमारो जीव निज, ताहि लै चल्यो दूर।
क्रूर सु विधि इह क्रूर को नाम धरयो अक्रूर॥"

२-"या मुरलीधर की मुरली अधरान धरी अधरा न धरौंगी।"

अर्थात् मुरलीधर की होठों से लगाई हुई मुरली को मैं अपने होठों पर न धरूँगी। यहाँ मुरली के व्याज से मुरलीधर की निन्दा झलकती है।

इसी प्रकार किसी की निन्दा में अन्य की स्तुति आदि का कथन होता है।

⊛ स्मरण

किसी अन्य की वैसी ही शोभा देखकर पूर्व में अनुभव की हुई अथवा देखी हुई वस्तु या प्राणी का स्मरण हो "स्मृति" अलङ्कार होता है परन्तु जहाँ सादृश्य वस्तु देखे बिना स्मृति मात्र हो वहाँ अलङ्कार नहीं होता।

"जो होता है उदित नभ में कौमुदी-कान्त आके।
या जो कोई कुसुम विकसा देख पाती कहीं हूँ॥
लोने लोने हरित दल के पादपों को विलोकि।
प्यारा प्यारा विकच मुखड़ा, है मुझे याद आता।"

यहाँ आकाश के कौमुदी-कान्त को अथवा खिले पुष्प को वा लोने लोने हरित दल को देख कर पूर्व देखा हुआ कृष्ण का मुँह स्मरण हो आता है।

प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा। सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा॥'

† भ्रम (भ्रान्तिमान) †

किसी और बात में किसी दूसरी बात का भ्रम होना।

"जानि कञ्ज सर बिच मुखहिं चिपटे अलिगन आय"

यहाँ अलिगणों के मुख पर कमल की भ्रान्ति हुई—

किंशुक मुकुल सु जानि कै परत भौंर शुक-तुण्ड।
सोऊ जामन भ्रान्त करि धरन चहत अलि-मुण्ड॥

⊛ सुमिरन देखे काहु के सुधि आवे जहँ खास।
...धि आवे वा बदन की देखे सुधा-निवास॥ (का० प्रकाश)

† भ्रांति और की और ही निश्चय भव अनुमान।
संग फिरत चकोर है बदन सुधा-निधि जान॥ (का० प्रकाश)

यहाँ तोता की चोंच को ढाक की अध-खिली कली समझ कर उस पर भौंरा गिरते हैं और तोता, भौंरा को जामुन जानकर चोंच से उसे पकड़ना चाहता है।

"कपि कर हृदय बिचार दीन मुद्रिका डारि तब।
जानि अशोक अँगार, सीय हरषि उठि कर गहेऊ॥

यहाँ मुद्रिका की चमक से अग्नि की भ्रान्ति सीता जी को हुई।

× सन्देह

जहाँ "कै तो यह है कै वह" ऐसा कह कर सन्देह किया जाय, वहाँ 'सन्देहालङ्कार' होता है।

इसके दो भेद हैं। एक में जिस वस्तु का सन्देह होता है उसके भेद करने वाले धर्म का कथन करके, मध्य में या अन्त में निश्चय कर लिया जाता है; जैसे—

"कैधों यह रमा! छीर सागर ते उपजी न,
कैधों यह गिरजा! न गिरते जनम है।"

"छीर सागर ते उपजी न" और "न गिरते जनम है," आदि भेद करने वाले धर्म के साथ "भेदोक्ति संशय" है।

जिसमें भेदोक्ति धर्म न कहा जाय वह "अनुक्तिभेद संशय" है।

१—*"जान्यो न परत ऐसो काम न करत कोऊ,*
गंधर्व, देवा है कि सिद्ध है कि सेवा है।"

× निहिचै होत नहीं है जहाँ, कहि संदेह अलंकृत तहाँ। (अलंकार दर्पण)

"सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है ।
सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है॥"

अपह्नुति

प्रकृत वस्तु का निषेध करके अन्य का आरोप किया जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। इसके छः भेद हैं। पाँच में कोई चिह्न नहीं होता है, परन्तु एक में 'मिस' शब्द होता है।

* शुद्धापह्नुति

जहाँ सच्ची बात को छिपा कर अन्य बात कही जाय।

"यह न मारुत है, वर व्याल है,
न यह आतप है, करवाल है।
यह न भूमि, चिता सुविशाल है।
तप नहीं, यह काल कराल है॥"

यहाँ मारुतादि का निषेध करके व्यालादि का स्थापन है।

"पहिरे श्याम न पीत पट घन में बिज्जु-बिलास"

यहाँ श्याम को घन तथा पीत-पट को विज्जु-छटा ठहराकर असली बात को छिपाया है।

† कैतवापह्नुति

जहाँ प्रत्यक्ष निषेध न करके छल, व्याज व मिस द्वारा अपह्नुति हो; जैसे—

---

* शुद्धापह्नुति जहँ करी दुरि वस्तु छिपि जात ।
यह नहिं [illegible] है यह [illegible] [illegible] ॥ ([illegible])

† जहाँ और के व्याज ते कहीं जु कारज और ।
तहँ कैतवापह्नुति कहत कवि [illegible] ॥ ([illegible])

१—"रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपनि दिखाया।"

२—"बजत बीन दप बाँसुरी रह्यो छाय रस राग।
मिस गुलाब के तियन पै पिय बरसत अनुराग॥"

हेत्वपह्नुति

जहाँ शुद्धापह्नुति कारण सहित हो।+

"शिव सरजाके कर लसै सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेश भुजंगिनी भखति पौन-अरि-प्रान॥"

यहाँ पर कारण बताकर किरवान को भुजङ्गिनी ठहराया है किरवान का निषेध है अतः हेत्वपह्नुति है।

"ये नहिं फूल गुलाब के दाहत हिय जु हमार।
बिन घनश्याम अराम में लागी दुसह दवार॥"

यहाँ गुलाब के फूलों का युक्तिपूर्वक निषेध कारण सहित कथन है।

* पर्यस्तापह्नुति

जहाँ किसी वस्तु में उसके धर्म का निषेध करके अन्य वस्तु में वह कथन किया जाय; यथा:—

"नहिं घन घन है, परम घन तोपहिं कहहिं प्रवीन।"

किसी किसी अपह्नुति में हेतु और पर्य्याय दोनों होते हैं।

+ वस्तु दुराये युक्ति सों हेतु अपन्हुति होय।
तीव्र चन्द्र नहिं रैनि रवि बड़वानल ही जोय॥ (भाषाभूषण)

* अनतहि के गुन अनतहि कहिये।
पर्य्यस्तापन्हुति सो कहिये॥ (पद्माकर दर्पण)

"है न सुधा यह है सुधा संगति-साधु-समाज ।
यहाँ सुधा में सुधा धर्म का निषेध है और सा
में उस धर्म का आरोप है ।

"मीन में नहिं प्रीति सजनी पंक में नहिं प्रेम
एक गति मति एक सजनी मरत ही में नेम ॥

* भ्रांतापह्नुति

और बात की शंका होते ही जहाँ सत्य कहकर
किया जाय:—

१—"चन्द न चन्दन-बिन्दु यह माँग न सुरसरि धार
प्रिय न नैन मोती लसे मैन में न हर नार ॥"

२-"कह प्रभु हँसि जानि हृदय डराऊ। लूक न असनि केतु नहि
ये किरीट दसकंधर केरे। आये बालि-तनय के

† छेकापह्नुति

जहाँ गुप्त बात सूचित कर फिर छिपाई जाय अर्थात्
की शंका का निरोध करके सची बात छिपाई जाय ।

"तिमिर-वंश-हर अरुन-कर आयो सजनी भोर ।
सिव सरजा, चुप रहि सखी, सूरज-कुल-सिरमौर ।

---

* बच सों परको भ्रम नसै भ्रान्ति अपन्हुति जान ।
दहन प्राण तन विष कहा नहिं सखि विरह कृशान ॥ (पद्म

† जहाँ और की शंका कहि के साँची बात छिपावै ।
छेकापन्हुति अलंकार सो ऐसी भाँति कहावै ॥ (भ्रंशका

सखी के प्रति सखी की उक्ति—तैमूर[1] के वंश का नाश करने वाला, लाल कमल से हाथों[2] वाला आया; दूसरी ने कहा शिवाजी, पहिली ने कहा चुप रह, सूर्य ।

"आँखें आति सीतल भईं दीन्हों ताप निवारि ।
क्यों सखि पीतम को लखे ना सखि ससिहिं निहारि" ॥

यहाँ सखी ने पूछा कि पीतम को देखकर आँखें ठण्डी हुई तब उत्तर में 'चन्द्रमा को देखकर' कहके उत्तर दिया, अर्थात् सखी बात छिपा दी ।

†दीपक ।

जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) अप्रस्तुत (उपमान) दोनों का एक धर्म कथन किया जाय ।

"संग ते यती कुमंत्र ते राजा,
मान ते ज्ञान पान ते लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी,
नासहिं वेगि नीति अस सुनी ॥"

यहाँ उपमेय 'कुमंत्र ते राजा' और उपमानों 'संग ते यती' आदि का एक ही धर्म 'नासहि वेगि' कथन किया गया है ।

तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों या केवल उपमानों का एक धर्म कहा जाता है, दीपक में दोनों का ।

---

१ तिमिर-वंशहर=तैमूर वंश नाशक अथवा तम नाशक २ अरुन-कर=अरुण हाथों का वा अरुण किरणों का ।

† "सो दीपक निज गुननि सों बर्न्य इतर इक भाइ ।
गज मद सों नृप तेज सों सोभा लहत बनाय ॥" (भाषाभूषण)

× मालादीपक

पूर्व कथित वस्तु पिछली कही हुई वस्तु का उत्कर्ष दिखावे (कहे)

"रस सों काव्यरु काव्य सों सोहत वचन महान।
वचनन ही सों रसिकजन तिन सों सभा सुजान॥"

यहाँ रस से काव्य और काव्य से वचन, वचन से रसिकजन और रसिक जनों से सभा का उत्कर्ष "सोहत" एक ही क्रिया द्वारा कथन किया गया है।

"जग जपु राम राम जपु जेही"

पूर्व से उत्तरोत्तर उत्कर्ष कथन किया गया है।

(दीपक और एकावली मिलकर माला दीपक होता है)

* कारक दीपक (करने वाला)

जहाँ बहुत सी क्रियाओं में कारक अर्थात् कर्ता का एक ही बार कथन हो; जैसे:—

"मधुर मञ्जु छवि-पुंज-छटा छिरकति वन-कुञ्जन।
चितवति रिझवति हँसति हँसति मुसकाति हरति मन॥"

यहाँ पर चितवति रिझवति हँसति इत्यादि सब का एक ही प्रकृति सुन्दरी कर्ता है।

"लेत चढ़ावत खेंचत गाढ़े, काहु न लखा रहे सब ठाढ़े"

यहाँ राम कर्ता ने लेत इत्यादि सब क्रियाएँ कीं।

× माला दीपक पूर्व पद उत्तर प्रति उपकार।
रस सों काव्यरु काव्य सों सोभा बचन अपार॥ (का० प्रकाश)

* कारक दीपक एक में क्रमते भाव अनेक। (भाषा रहस्य)

जहाँ गुण और क्रियाओं का कथन क्रमपूर्वक साथ हो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है परन्तु कारक दीपक में यह नियम नहीं है।

* आवृत्ति दीपक

जहाँ पर एक अर्थ वाले भिन्न पदों की आवृत्ति; भिन्न अर्थ वाले एक से पदों की आवृत्ति अथवा एक ही अर्थ वाले एक से पदों की आवृत्ति हो, वहाँ आवृत्ति दीपक होता है।

पदावृत्ति—(एक ही पद की भिन्न भिन्न अर्थों में आवृत्ति)

"दीन जानि सब दीन, नहिं कछु राख्यो बीरबर"

यहाँ 'दीन' शब्द एक जगह दुखिया और दूसरी जगह देने के अर्थ में आया है।

"हे विधि मिलै कवन विधि बाला"

अर्थावृत्ति—(एक ही अर्थ में भिन्न पदों की आवृत्ति)

"मिल्यो हृदय को अमित सुख पायो अधिक प्रमोद।"

"मिली हृदय को शान्ति अति पूजी मन अभिलाष"

" फूलहिं कोकिल गूँजहिं भृंगा "

यहाँ एक ही अर्थ के सुख और प्रमोद मिली और पूजी फूलहिं और गूँजहिं पद आये हैं

---

* दीपक आवृत्ति तीन बिधि आवृति पद की होय।
पुनि है आवृति अर्थ की दूजे कहिये सोय॥
पद और अर्थ दुहुन की आवृति तीजै लेखि।
घन बरसै है री सखी निसि बरसै है देखि॥
फूले कुञ्ज कदम्ब के केतकि बिकसे आइ।
मन अंधे हैं मोर अरु चातक मन हरषाइ॥ (भाषा भूषण)

पदार्थावृत्ति (एक ही पद की एक ही अर्थ में आवृत्ति)

"तप 'है न' ज्ञान 'है न' शक्ति 'है न' ध्यान 'है न' भक्ति 'है न' मान हिये कैसे मातु पाऊँ तोय ।"

यहाँ 'है न' की एक ही अर्थ में आवृत्ति है

"गले मलाई पै लहहिं लहहिं निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच" ॥

यहाँ लहहिं तथा सराहिय दो बार एक ही अर्थ में आये हैं। (पदावृत्ति यमक से और पदार्थावृत्ति अनुप्रास से मिलते हैं।)

प्रतिवस्तूपमा

उपमान और उपमेय वाक्यों का पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा एक धर्म कहा जाय अर्थात् दोनों में वस्तु प्रतिवस्तुभाव हो।

उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य का एक ही साधारण धर्म भिन्न शब्दों द्वारा कथन हो अर्थात् एक उपमेय वाक्य हो दूसरा उपमान। यद्यपि दीपक-अर्थावृत्ति में भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म प्रकट होता है परन्तु उपमान और उपमेय वाक्य का नियम नहीं होता। अर्थान्तरन्यास में सामान्य विशेष भाव से समर्थन किया जाता है।

"भ्राजत भानु प्रताप सों, राजत धन सों सूर"

भ्राजत और राजत एक ही धर्म दोनों वाक्यों में शब्द भेद से कथित हैं।

× प्रतिवस्तूपमा धर्म सम जुदे जुदे पहचान।
सोहत भानु प्रताप सौं लसत सूर धनुबान ॥ (कां० प्रकाश)

"मद-जल धरन द्विरद बल धारत, बहु जल धरन जलद छवि साजै।
पहुमि धरन फनि-नाथ लसत अति तेज धरन ग्रीषम-रवि छाजै।
खग्ग धरन शोभातँह राजत रुचि भूषण गुन धरन समाजै
दिल्ली दलन दखिन दिसि थम्मन ऐंड़ धरन शिवराज बिराजै"।

यहाँ "धारत और साजै" लसत और छाजे आदि भिन्न-शब्दों में उपमान और उपमेय वाक्यों का एक ही धर्म कथित है।

+ दृष्टान्त

उपमेय और उपमान वाक्य और दोनों का भिन्न भिन्न अर्थ विम्बप्रतिविम्ब भाव से कहा जाय:—

'सहृद जन ही काव्य का लेते हैं आनन्द।
पीते हैं अलि वृन्द ही अमल कमल-मकरंद'॥
'रहिमन अति सुख होत है बढ़त देख निज गोत।
बड़री आँखिन को निरखि आँखिन को सुख होत'॥
'कुलहि प्रकासे एक सुत नहिं अनेक सुतनिंद।
चन्द्र एक सब तम हरै नाहिं तारागन वृन्द'॥
'शिव! औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिन आनन घाले घाव'॥
'निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोउ करत कटु औषधि को पान'॥

+जहाँ विम्ब प्रतिविम्ब सम जुगल वाक्य को धर्म।
ताहि कहत दृष्टान्त हैं जे कवि कविता मर्म॥ (पद्माभरण)

यहाँ छंद के प्रथम वाक्य और द्वितीय वाक्य में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है और जो वाचक शब्द द्वारा प्रकट नहीं किया गया है अतः दृष्टान्त है।

प्रथम निदर्शना।

'जो' 'सो' 'जे' 'ते' आदि पदों द्वारा दो समवाक्यों के अर्थ की जहाँ एकता दिखाई जाय वहाँ प्रथम निदर्शना होती है:—

जो, सो, जिमि, तिमि, जस, तस आदि प्रायः निदर्शना सूचक हैं जो कहीं आते हैं कहीं नहीं।

"जो मृदु वच दातार को सु पुरट माँहि सुवास।
ससि महँ लसत जु जोन्ह-छवि नरमें सुमति प्रकास।"

दातार के मीठे वचन सोने में सुगंधि हैं, नर में सुमति होना चन्द्रमा में प्रकाश है।

"साहन सों रन माँडिबो कीबो सुकबि निहाल।
शिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल॥"

दूसरी निदर्शना

जहाँ उपमेय के गुण को उपमान अथवा उपमान के गुणों को उपमेय धारण करे वहाँ दूसरी निदर्शना होती है:—

१—पंकज रेनु सोह मग धरनी।
नीति निपुन नृप की जस करनी॥

२-जल संकोच बिकल भइ मीना, अबिबेकी कुटुम्बी जिमि धनु हीना।

४-"सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर, होय बिषय-रत मन्द मन्दतर।
कंचन काँच बदलि सठ लेही, करतें डारि परस-मनि देही।"

५—"*तुम वचनन की मधुरता रही सुधा में छाइ।*"

तीसरी निदर्शना *

जो अपनी अवस्था से औरों को उपदेश करे। सदर्थ और असदर्थ में इसके दो भेद हैं।

सदर्थ में:—

दे सुफूल फल दल जु द्रुम यह उपदेसत ज्ञान।
लाहि सुख सम्पति कीजिए आए को सम्मान॥"

असदर्थ में:—

"आँधी से आपस में लड़कर आग स्वयं उपजाते हैं।
बाँस-वंश फिर उससे जल कर भस्म शेष हो जाते हैं॥
आपस में लड़ने के फल को सब को प्रकट दिखाते हैं।
और दूर रहना दुष्टों से सोदाहरण सिखाते हैं॥"

---

* कहिये त्रिविधि निदर्शना वाक्य अर्थ सम दोय।
एक क्रिया पुनि और गुन और वस्तु में होय॥ (भाषा भूषण)
जु सम वाक्य जुग अरथ सो करत एकतारोप।
'जो' 'सो' पदनि निदर्सना ताहि कहत करि चोप॥
वर्न्य धर्म जु अवर्न्य में धरै जु वर्न्यहु माहिं।
धर्म अवर्न्यहु को कहत बिय निदर्सना ताहि॥
जु निज अवस्था सों करै भलो बुरो फल बोध।
सो सदर्थ असदर्थयुत यों निदर्सना सोध॥ (पद्माभरण)

* सहोक्ति

"सह" अर्थ वाले शब्दों के साथ जहाँ एक ही पद दो अर्थों को पूरा करे, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है।

१—*"पीय गवन के संगही, जायौ चाहत प्रान"*

२—*"विद्या ही के साथ, भयो नम्रता को उदय"*

३—*"कीरति अरिकुल संगही, जलनिधि पहुँची जाय"*

४—नाक पिनाकहि संग सिधाई।

यहाँ 'संग' अथवा 'साथ' शब्द के साथ एक ही क्रिया में दो अर्थों का निर्णय है।

† विनोक्ति

जहाँ पर प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना 'हीन वा रम्य' हो वा कही जाय, वहाँ विनोक्ति है, जैसे—"सील बिना ससि-मुखी सोभा न धरति है।"

यह अलंकार मानसकार ने दो प्रकार का माना है:—

प्रथम १—*"सभा खलों के बिना शोभित होती है"*

-*"बिधु-बदनी सब भाँति सँवारी, सोह न बसन बिना बर नारी।"*

-*"स्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥"*

—*"जीवन विथा है एक बिना स्वावलम्ब के"*

जहाँ अन्य के बिना शोभा हो अथवा शोभा न हो ऐसे दो प्रकार के भेद भी माने हैं।

---

* "होत सहोक्ति जो साथ ही बरनत सुनत सुहाय
कीरति अरि कुल संग ही जलनिधि पहुँची जाय"

† "है विनोक्ति द्वै भाँति की प्रस्तुत कछु बिनु हीन।
अरु सोभा अधिकी लहै प्रस्तुत कछु ते हीन" ॥ (मानस दर्पण)

*"प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसेही नाथ पुरुष बिनु नारी ॥*

द्वितीय—"संत हृदय जस गत मद-मोहा"

+ समासोक्ति (संक्षेप-कथन)

कहीं प्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन करने में श्लिष्ट विशेषणों की समता के बल से "अप्रस्तुत वृत्तान्त का स्फुरण हो वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है ।

*"चन्द्रबिम्ब पूरण भये क्रूरकेतु हठ दाप ।
बलसों करिहैं ग्रास यहि जेहि बुध रक्षक आप" ॥*

चन्द्र, केतु और बुध श्लिष्ट विशेषण हैं चन्द्र का दूसरा अर्थ चन्द्रगुप्त, केतु का राक्षस मंत्री और बुध का अर्थ नीतिज्ञ चाणक्य है ।

प्रस्तुत अर्थ यह है—चन्द्रगुप्त पूर्ण विभव को प्राप्त हुआ, राक्षस मंत्री जीतना चाहता है, जिसकी कि नीतज्ञ चाणक्य रक्षा करते हैं ।

कहीं कहीं श्लिष्ट न हो तो भी दूसरा अर्थ भासित होता है ।
"लोचन मगु रामहिं उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥

यहाँ यह भासित होता है कि चंचल व्यक्ति को रोकने के लिये किवाड़ बन्द कर देते हैं ।

+ "समासोक्ति प्रस्तुत विषै अप्रस्तुत को ज्ञान ।
कर पसारि ससि मालतिहि परसत कलानिधान ॥" (पद्माभरण)

नोट—श्लेप में जितने अर्थ हों सभी प्रस्तुत समझे जाते हैं परन्तु समासोक्ति में केवल एक ही इच्छित अर्थ मुख्य है औ अर्थ भासमान होते रहते हैं।

"सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।"

यहाँ इस पद से अप्रस्तुत वीर की प्रशंसा लक्ष्य है।

❀ व्यतिरेक

उपमान से उपमेय में कोई बात विशेष या न्यून दिखाई जाय:-

"साधू ऊँचे सैल सम किन्तु प्रकृति सुकुमार"।

साधु पुरुष ऊँचे तो शैल के समान हैं किन्तु उनकी प्रकृति कोमल है और पर्वत की कठोर है।

---

* "व्यतिरेक जु उपमानते उपमें अधिको देख।
मुख है अंबुज सो सखी मीठी बात विशेष॥"

कवि दूलहे ने तीन प्रकार का कथन किया है—

"उपमान उपमेय में विशेष 'व्यतिरेक' सो,
अधिक न्यून सम त्रिविधि बखानो है।
कहै कवि दूलह निहारे चकचौंधी लागे,
कुन्दन सो रूप पै सुगंध सरसानो है।
सुन्दर श्याम सुकुमार मुख कमल सो,
रवि को उदै विकार अंत कुम्हिलानो है।
घनश्याम ही में बसै अमर अमर होनि,
दामिनी और कामिनी कोई भेद जानो है"॥
(कविकुल कण्ठाभरण)

२—*"रे नृप, कल्पवृक्ष से, तेरे हाथ में यह विशेषता है कि यह करण (कान) को भूषित करता है और यह (तेरे हाथ) करण (दानी करण) को तिरस्कृत करते हैं ।"*

३—*"विधि ते कवि सब विधि बड़े या में संसय नाहिं ।*
षट गुन विधि की सृष्टि में नव गुन कविता माहिं" ॥

* परिकर

किसी विशेष अभिप्राय के हेतु विशेषणों का जहाँ कथन हो ' अर्थात् क्रिया से सम्बन्ध रखने वाला विशेषण हो ।

"पिनाक-पाणी महादेव को कुसुमायुध मैं करूँ अधीर ।"

यहाँ पिनाक नाम कठोर धनुष है जिन शिव के हाथ में है उन्हें कोमल कुसुमों के आयुध वाला मैं कामदेव धैर्यच्युत करूँगा ।

यहाँ पिनाकपाणी और कुसुमायुध साभिप्राय विशेषण हैं ।

वृन्दावन-चन्द नँद-नंद घनश्याम देखो,
आन इन आँखिन की तपन बुझाई है ॥"

यहाँ "वृन्दावन-चन्द" आदि साभिप्राय विशेषण हैं ।

"आस में वाके सुधाकर हैं वह क्यों न तो मन-ताप हरेंगो"

---

* "है परिकर आशय लिये जहाँ विशेषण होय ।" (भाषाभूषण)
' अभिप्राय सहित विशेषण जहाँ हो तेहि ठाँ परिकर अलंकार कहते है ।"

परिकरांकुर *

साभिप्राय विशेष्यों से विशेषणों का जहाँ कथन हो अर्थात् क्रिया का अभिप्राय विशेष्य से हो:—

१—*"देत चतुर्भुज देव हैं चार पदारथ आप"*

विष्णुजी चारों भुजाओं से चार पदार्थ देते हैं, अतः चतुर्भुज विशेष्य साभिप्राय है।

२—*"शेष न तुव गुन कहि सकैं।"*

अर्थात् सहस्र जीभ वाला शेष भी तुम्हारे गुण नहीं कह सकता।

३—*"सत्य नाम कर हरु मम सोका।"*

"सुनिये विनय मम विटप असोका।"

अर्थात् तुम अशोक हो मुझे भी अशोक करो।

श्लेष (अनेकार्थवाची)

जहाँ एक पद में अनेक अर्थ हों:—

"चरन धरत चिन्ता करत भावत नींद न सोर।
सुबरण को ढूँढत फिरत कवि भावुक अरु चोर॥"

इस के तीन अर्थ हैं—

कवि पक्ष में:—चरन (पद) रखने में सोचते हैं, नींद और शोर नहीं भाता, सुबरण (सुंदर अक्षर) को ढूँढते हैं।

भावुक—(सौंदर्य्य उपासक) पक्ष में—

---

* परिकर अंकुर नाम, साभिप्राय विशेष जहँ।
नेंक न मानत बाम सुधेहु पिय के कहे॥ (का० प्रभा०)
अभिप्राय सहित विसेष जहाँ बरनियै परिकर अंकुर को ऐसो रूप ध्याई है।
(कविकुलकण्ठाभरण)

सुन्दर प्रकृति की छटा देखते हैं, उसमें एक एक चरण (पैर) रखने में सोचते हैं—नींदादिक नहीं भाती।

चोर पक्ष में—सोना ढूंढते हैं, पैर रखने में चिन्ता करते हैं, नींदादि नहीं भाती।

२—"*रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून।*
पानी गये न उबरे मोती मानुस चून॥"

३—"*साधु-चरित सुभ सरिस कपासू।*
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥"

इस पद्य में साधु चरित तथा कपास का अर्थ घटित होता है। अर्थात्—साधुओं का चरित निरस (रूखा) विशद (पाप रहित) और गुण वाला होता है। तथा कपास पक्ष में सूखा, उजला और धागे वाला होता है।

*अप्रस्तुत प्रशंसा।

प्रस्तुत[1] के वर्णन करने के लिये अप्रस्तुत का ऐसे ढंग से वर्णन किया जाय कि प्रस्तुत (इष्ट बात) स्पष्ट सूचित हो

इसके ५ भेद हैं—कारणनिबंधना, कार्यनिबंधना, सारूप्य-निबंधना; सामान्य-निबंधना और विशेष निबंधना।

+ कारण निबंधना:—

जहाँ अप्रस्तुत कारण के द्वारा प्रस्तुत कार्य का वर्णन इष्ट हो।

---

* अप्रस्तुत विरतान्त महँ जहँ प्रस्तुत को ज्ञान।
अप्रस्तुत परसंस सो पञ्च प्रकार प्रमान॥ (पद्माभरण)

+ अप्रस्तुति कारनहु तें फुरै जु प्रस्तुत काज।
यों कारन सु निबन्धना भाषत हैं कविराज॥ (पद्माभरण)

1 प्रस्तुत—जिसका वर्णन करना अभीष्ट हो। अप्रस्तुत-जिसका वर्णन न करना हो।

वक्ता जिस कार्य को वर्णन करना चाहता हो उसको न कहके उसके कारण को वर्णन करे।

"कोउ कह जब बिधि रति मुख कीना,
सार भाग शशि कर हर लीना।
छिद्र सों प्रगट इन्दु उर माहीं,
तेहि मग दीसति नभ परछाहीं॥"

यहाँ रति के मुख-सौन्दर्य्य रूपी कार्य का वर्णन प्रस्तुत है और "चन्द्रमा का सार-भाग लेकर" जो रति का मुख बनाने का अप्रस्तुत हेतु है उसका वर्णन है।

❀ कार्य निबन्धनाः—

अर्थात् कारण कहना अभीष्ट हो पर अप्रस्तुत कार्य का वर्णन किया जाय।

"राधिका को बदन सम्हारि बिधि घोये हाथ,
ताते भयो चन्द, कर झारे भये तारे हैं।"

यहाँ राधिका के मुख की शोभा कथन इष्ट है और चन्द्र तारों का हेतु होना कल्पित है। कार्य का वर्णन करके कारण कथन किया है।

"जो या तिय की गति निरखि हंसहु तजहु गुमान।
जा अँग की सुकुमारता मालति होय पखान॥

यहाँ पहिले पद में गति की प्रशंसा करना तथा दूसरे पद में अंग की प्रशंसा करना ध्येय है, जो स्पष्ट न कह कर 'हंस अपनी चाल का गुमान तजे' तथा 'मालती पत्थर होय' यह कार्य कथन किया है।

❀ "अप्रस्तुत कार्यहेतुं प्रस्तुत कारणज्ञान" (पद्माभरण)

\+ सारूप्य निबन्धना:—

जहाँ प्रस्तुत के तुल्य अप्रस्तुत का कथन हो—

"अन्धकारमय होगया यह संसार समस्त।

चन्द्र सूर्य दोनों अहो हुए हमारे अस्त॥"

'हमारे' विशेषणी भूत सम्बन्ध से यहाँ सुन्द और उपसुन्द नामक दैत्यों का कथन किया जाता है।

इसके तीन भेद हैं:—

श्लेषहेतुक, श्लिष्टविशेषणहेतुक और सादृश्यमात्र अथवा अन्योक्ति।

"पुरुषपनेहू ते नसत पावत चाहि जहान।

तदपि उधारहिं जग प्रगट यह पुरुषोत्तम मान॥"

यहाँ पुरुषोत्तम श्लेष वाची है विष्णु तथा उत्तम मनुष्य की की प्रशंसा होती है।

"धिक तेली जो चक्र-धर मोहिन करत बिहाल।

पारथि धनि विघलित करत चक्री धन्य कुलाल"॥

तेली और कुलाल (कुम्हार) का कथन अप्रस्तुत है श्लिष्ट-विशेषणों द्वारा राज वृत्तान्त का वर्णन प्रस्तुत है।

"भौंरा ये दिन कठिन हैं दुख सुख सहो सरीर।

जब लग फूले न केतकी, तब लग बिलम करीर॥"

यह अप्रस्तुत भौंरे के सहारे किसी प्रस्तुत दुःखित जन का वर्णन है। इसमें प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों का सादृश्य मात्र वर्णन है।

\+ प्रस्तुत अप्रस्तुत दुहों है जहँ धर्म समान।

सो सारूप्यनिबन्धना पद्माकर चित आन॥ (पद्माभरण)

"अति नीचहि हम कूप ! तुम, रेद करहु अस नाहिं।
सजल हृदय यहु होन सों, औरन के गुन माहिं ॥
"केसर युत सतपरन में गये आसु दिन बीत।
सो षट-पद यह कुटज में कियो होय किम प्रीत ॥"
"घोखे दाड़िम के सुआ, गयो नारियल खान।
राम साईं पाईं सजा फिर लाग्यो पछितान ॥"

यहाँ अप्रस्तुत कूप, सूआ, आदि के कथन में किसी अन्य प्रस्तुत का वर्णन इष्ट है।

× विशेष निबन्धना—जहाँ सामान्य प्रस्तुत हो विशेष का वर्णन है।

हनूमान बहु गिरि धरे, गिरिधर कहे न कोय।
साईं एकहि गिरि धर्यो गिरधर गिरधर होय ॥"

यहाँ इस सामान्य के वर्णन के लिये छोटे मनुष्य का बहुत कार्य करने पर भी नाम नहीं होता और बड़े का थोड़े ही काम से; इस विषय को पुष्ट करने के लिये हनूमान और श्रीकृष्ण के विशेष वृतान्त को कहा है।

"धरि कुरंग को अंक, मृगलांछन ससि नाम भो।
मृग-जन हतत निसंक, नाम मृगाधिप हरि लह्यो ॥"

नम्रता से दोष तथा क्रूरता के प्रसिद्धि होती है, इस सामान्य बात को सिद्ध करने के लिये विशेष रूप से चन्द्रमा और सिंह के उदाहरण दिये गये हैं।

× "अप्रस्तुत जु विशेष तें जहँ सामान्य फुरैहि।" (पद्माकर)

* सामान्य निबन्धना—

विशेष प्रस्तुत के लिये सामान्य का वर्णन हो, अर्थात् सामान्य के कथन से विशेष का ज्ञान हो।

"होते हैं तेजस्वि-जनों के कार्य सफल सब अपने आप।"

"दैत्य राज सुन्द, इस सामान्य वाक्य के सहारे यह विशेष कथन करता है कि तेजस्वी होने से मेरे सब काम सिद्ध होंगे"

"धरैं न मन में सोच वे बैर प्रबल सौं ठानि।
सोवत आग लगाय के सदन-माँझ पट तानि॥"

बलवान से बैर करके निश्चिन्त होना आग लगाकर घर में सोना है। यहाँ सबल की प्रशंसा से, निर्बल के बैर करने के स्वभाव की निन्दा की है।

"बड़े प्रबल सौं बैर करि करत न सोच बिचार।
ते सोवत बारूद पर पट में बाँधि अँगार॥"

इस दोहे के सामान्य भाव में यह प्रस्तुत भाव है कि बड़े प्रबल से बैर न करो।

× प्रस्तुताङ्कुर।

प्रस्तुत वर्णन में अन्य प्रस्तुत आभासमान हो। जिसमें प्रस्तुत को उपालम्भ या उपदेश हो।

---

* "अप्रस्तुत सामान्य ते प्रस्तुत फुरै विशेष।" (पद्माभरण)

× "प्रस्तुत अंकुर है किये प्रस्तुत में प्रस्ताव।
कहाँ गयो अलि केवरे छाँड़ि सुकोमल भाव॥" (भाषाभूषण)

प्रस्तुत धरि प्रस्तुत फुरै प्रस्तुत अंकुर होय।
तजि कमलिनि अलि कनत कहुँ तू भायो निसि खोय॥ (पद्माभरण)

१—"साईं नदी समुद्र सों मिली बड़ापन जानि।
जात नास भयो नाम को मान महत की हानि॥

यहाँ प्रस्तुत नदी के वर्णन में—किसी क्षुद्र का अस्तित्व बड़े मनुष्य के साथ मिलने से नष्ट हुआ—प्रस्तुत अर्थ भी है।

२—"रे विकसित अरविन्द! स्रवत मकरन्द तिहारो।
कछु कछु चाटत, गूंजि रहे मधु मधु-व्रत-धारी॥
तुव सौरभ को दिसि दिसि में करि रह्यो प्रचारा।
निराक्षद ह्वै अन्य बन्धु यह वायु तुम्हारा॥"

३—"जिन दिन देखे वे कुसुम गई जु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में अपत कटीली डार॥"

अरविन्द और भौंरा के प्रस्तुत वर्णन में किसी मनुष्य को भी उपालम्भ प्रस्तुत है।

*विरोधाभासालङ्कार।

जहाँ वास्तविक में विरोध न होने पर भी विरोध दिखाई दे। जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के कारण विरोध अनेक प्रकार का दिखाई देता है—

---

*"कहत विरोधाभास तहँ झूठे जहाँ विरोध।
जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहिं निज बोध॥" (पद्माभ
"भासे जबै विरोध सो तबै विरोधाभास।" (मानस ह

"श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
...पण तेरे अरुन प्रताप सफेद लखे कुनवा नृप सारे॥
...हि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिप वारे।
...क अचंभव होत बड़ो तिन होंठ गहे अरि जात न जारे॥"

'सेत से कारो होत हैं'–गुण का गुण से विरोध।
'अरुण से सफेद है'–गुण से गुण का विरोध॥
'कृशानु से गरे हैं'–द्रव्य से क्रिया का विरोध।
'होंठ गहे जारे न जात'–क्रिया से क्रिया का विरोध है॥

"मोर पखा 'मतिराम' किरीट से कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसिक्यान मनोहर कुंडल डोलन में छवि छाई॥
...लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई।
...ा मुख की मधुराई कहा, कहौं मीठी लगे अँखियान लुनाई॥

'यहां लुनाई मीठी लगे'–द्रव्य से क्रिया का विरोध है।

"बैन सुन्यो जब ते मधुर तब ते सुनत न बैन।
नैन लगे जब ते लखो तब ते लगत न नैन॥"

जब से श्रीकृष्ण प्यारे के वचन सुने तब से किसी बात को न मानना तथा जब से उनका दर्शन हुआ है तब से नींद नहीं आना यह स्पष्ट है परन्तु दोहा में पढ़ने से विरोध सा जान पड़ता है।

❁पर्यायोक्ति ।

जहाँ कोई बात व्यङ्ग से (स्पष्ट न कह कर हेर फेर से) कही जाय या किसी बहाने से काम साधा जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार होता है ।

प्रथम भेद—

जहाँ व्यङ्ग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय ।

"माँगी नाव न केवट आना, कहा तुम्हार मरम मैं जाना ।
चरन कमल रज को सब कहहीं । मानुष करनि मूरि कछु अहहीं ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई, पाहन ते न काठ कठिनाई ।
जौं प्रभु अवसि पार गा चहहू, तौ पद-पदम पखारन कहहू ॥"

यहाँ भक्त केवट "चरण धोकर पीना चाहता है" परन्तु अपनी इच्छा को सीधे न कह कर इस व्यङ्ग से कहता है कि तुम्हारे चरणों में मनुष्य बनाने वाली शक्ति है, इसलिये चरणों की धूल को धोकर नाव पर चढ़ाऊँगा, नहीं तो मेरी नाव उड़ जायगी ।

"सीता हरन तात जनि कहउ पिता सन जाय ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दसानन आय ॥"

यहाँ राम ने जटायु से स्पष्ट रावण का मारना नहीं कहा कुछ हेर फेर के साथ कहा ।

❁ "पर्यायोक्ति प्रकार है कछु रचना सों बात ।
मिसकरि कारज साधिये जो हित चित्त सोहात ॥" (भाषा दास)

द्वितीय भेदः—

जहाँ बहाने से कार्य हो—

"भूखे हैं मृगबाल, ढूँढत हैं निज माय को।
चलौ सखी उठि हाल, दीजे तिनहिं मिलाय अब॥"

शकुन्तला को राजा से बातें करने के लिये एकान्त में छोड़ सखियाँ बहाने से चली गईं।

इसी प्रकार—

"लखन हृदय लालसा विसेषी, जाय जनकपुर आइय देखी"।

* आक्षेप

(दोष निकालना या बाधा डालना)

जहाँ किसी कार्य में युक्त के साथ दोष लगा कर बाधा डाली जाय वहाँ आक्षेपालङ्कार होता है। आक्षेप तीन प्रकार का होता है:—

आक्षेप प्रथम—

जहाँ पहिले किसी बात को कह कर उसका निषेध किया जाय।

"यद्यपि हैं करनीय, मैं न कहँहु पै करहु अस।"

करनीय कहकर के भी, 'मैं करने को नहीं कहता' इसके द्वारा निषेध है।

---

* आप कहै कछु बात बरजै ताहि विचार के।
कविजन मन अवदात बरनत यों आक्षेप हैं॥" (अलंकार दर्पण)
"तीन भाँति आक्षेप हैं, एक निषेधाभास।
पहिले कहिये आप कछु बहुरि फेरिये तास॥
दूरे निषेध जु विधि बचन लक्षन तीनों लेखि।" (भाषाभूषण)

"तानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहि सनाथ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥"

यहाँ पहिले कही बात का पीछे निषेध किया।

द्वितीय आक्षेप—

जहाँ निषेध का आभास मात्र हो।

"कोसलदिन, जड़! जानसि मोहीं, मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं"

यहाँ लक्ष्मण जी के 'विप्र' संबोधन का निषेधाभास है।

"भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचारि बहोरि—
करब साधुमत लोकमत नृप-नय निगम निचोरि॥"

यहाँ प्रथम तो भरत विनय को सुनना फिर सब के सलाह का तत्त्व निचोर कर उसके अनुकूल करना अर्थात् प्रथम बात का दूसरी से निवारण हो गया।

तृतीय आक्षेप—

जहाँ विशिष्ट रूप से विधि कथन कर निषेध किया जाय अथवा निषेध करके विधान किया जाय।

१—*"करहु तिताहि सुख, आय इत दुख न देहु दुखियानि"*
२—*"राज दीन कहँ दीन बन मोय न दुख लवलेस,*
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचण्ड कलेस।"

यहाँ पहिले विधान करके युक्ति से निषेध किया है।

रघुपति चरित अपार बचन अगोचर बुद्धि पर।
बरनौं मति अनुसार दोष दोसि छमियो सुजन॥

यहाँ पहिले निषेध करके पीछे विधान किया है।

❀विभावना (विचारपूर्वक कल्पना)

अर्थात् किसी घटना के सम्बन्ध में कारण की विलक्षण कल्पना विभावना कहलाती है। यह छः प्रकार की होती है—

❀ प्रथम विभावना—

जहाँ बिना कारण के कार्य होना कथन हो।

१—*"साहितनै शिवराज की सहज टेव यह ऐन।*
अनरीझे दारिद हरे अनखीजे अरि सेन॥"

२—*मुनि तापस जिनते दुख लहईं। ते नरेश बिनु पावक दहईं॥*

× द्वितीय विभावना—

कारण पूरा न होने पर कार्य हो जाय; जैसे:—

"भीत होकर शत्रु भागे हैं सही,
दैत्य-कुल के भाग जागे हैं सही।
किन्तु रण की लालसा ही रह गई,
उमड़ कर झट रक्त-धारा बह गई॥"

यहाँ ज्योंही लड़ना शुरू हुआ "रक्त-धारा" बह गई, पूरा युद्ध न हुआ।

"बिना प्रत्यञ्चा के, विषम धनुषों से शर कहाँ।
चलाये जाते हैं, हृदय विधता है तनु नहीं॥"

और भी:—

"काम कुसुम-धनु-सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें॥"

❀ (प्रथम) "हेतु बिनु कारज को प्रथम विभावना है।" (कविकुल कल्पतरु)
×(द्वितीय) "हेतु अपूरनते करै कारज पूरन होय।" (मानस रहस्य)

यहाँ धनुष बाण हाथ में लेने मात्र से काम पूरा हो गया

*तृतीय विभावना ।

कार्य की रोक होने पर भी कार्य हो जाय जैसे:—

"विपदाह में होय के पर दुख हरत महान"

और भी:—

"जो ज्ञानिन के चित्त अपहरई । बरियाई विमोह बस करई ॥"

यहाँ ज्ञान प्रतिबन्धक होने पर भी विमोह बस में करता है।

"निसि दिन श्रुति-संगति तऊ, नैन राग की खानि"

तऊ, (तौभी) (वाचकों) से श्रुति-संगति होने पर भी 'नैन राग की खानि' का कथन है।

+चतुर्थ विभावना ।

जहाँ अन्य कारण से कार्य्य पैदा हो।

"क्या देखूँगी न अब कढ़ता इन्दु को आलयों से ।
क्या फूलेगा न, अब गृह में पद्म सौंदर्य्यशाली ॥"

आलयों से इन्दु निकलना, घरों में कमल खिलना, अन्य कारण से संभावनीय कार्य होना कथित है।

---

* (तृतीय) प्रतिबन्धक के होत ही कारज पूरन मान ।
+ (चतुर्थ) और अकारण वस्तु ते कारज प्रगटित होत ॥
कोकिल की बानी भई बोलत सुन्यो कपोत । (भाषाभूषण)

*पंचम विभावना।

विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

—"सरी छोड़े ज्वाला, ससि किरण पाला सँग परी।
तुहु बज्राकारी, निज सुमन सों बानन करी॥"

चन्द्रमा की किरणों से आग निकलना और कामदेव के मनसरों का वज्राकार होना विरुद्ध कारण के कार्य हैं।

—"जो देवेगा अवनितल को नित्य का सा उजाला।
तेरा होना उदय ब्रज में तो अँधेरा करेगा॥"

यहाँ विरुद्ध कारण का कार्य है कि सूर्य का उदय होना ज में अँधेरा करेगा।

—"जेहि तरु रहत करत सोई पीरा।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥"

यहाँ त्रिविध समीर से उरग स्वास समपीड़ा होना कहा है।

+षष्ठम् विभावना।

कार्य से कारण का जन्म हो।

—"अचरज भूपण मन बढ्यो श्री सिवराज खुमान।
तव कृपानु धुव धूम से भयो प्रताप कृसान॥"

यहाँ धूए से अग्नि का जन्म है।

२—"कमल नयन से बहि चली जलधारा तेहि काल"

जल से कमल होता है यहाँ कमल से जल बहता है।

३—कर-कलपद्रुम सों करयो जस समुद्र उत्पन्न

---

* (पंचम) "काहू कारन ते जबै कारज होय विरुद्ध।"

+(षष्ठम) "काहू कारज ते जबै उपजै कारण रूप।
नैन मीन तें देखियत, सरिता बहति अनूप॥" (भाषाभूषण)

× विशेषोक्ति ।

प्रबल कारण होने पर भी कार्य न हो ।

१—"जाई राजघर ब्याही आई राजघर,
महाराज पूत पायेहू न सुख लहियतु हैं ।"

२—"त्यों त्यों अति प्यासो मरे ज्यों ज्यों पियत अघाय ।"

३—"दौलत इन्द्र समान बढ़ी पै गुमान कै नेकु गुमान न आवे"

यहाँ दौलत का बढ़ना ही प्रबल कारण है परन्तु गुमान पैदा न हुआ ।

*असम्भव (जिसका होना सम्भव न हो)

जहाँ अनहोनी सी बात का वर्णन हो—अर्थात् जो बात कहीं होने वाली न प्रतीत हो वह होजाय ।

"औरंग यों पछितात, मैं कर तो जतन अनेक ।
शिवा लेयगो दुर्ग सब, को जाने निसि एक ॥

"हरि इच्छा सब ते प्रबल विक्रम सकल अकाय ।
किन जानी लुटि जायँगी अबला अरजुन साथ ॥

यहाँ अर्जुन ऐसे वीरों के साथ रहते अबलाओं का लुटना असम्भव है पर लुट गई ।

× विशेषोक्ति जब हेतु सों कारज उपजै नाहिं ।
नेह घटत नहिं हिय तऊ काम दीप घट माहिं ॥ (भाषाभूषण)

"पूरन कारज होय, काज न होय तऊ तहाँ ।
विशेषोक्ति है सोय, समुझि लेहु सब चतुरजन ॥" (अलंकार दर्पण)

* "कहैं असम्भव होत जब बिना असम्भव काज ।
गिरिधर धरि है गोप सुत को जानेगो आज ॥" (काव्य प्रभाकर)

×असंगति (प्रथम)

जहाँ कारण कार्य परस्पर प्रतिकूल से जान पड़ें तथा कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो।

१—"जिन बीथिन बिथुरें दोउ भाई। थकितहोंय सब लोग लुगाई"

गलियों में बिथुरते हैं दोनों भाई और थकित होते हैं लोग लुगाई।

२—"राम चले जब अवध तें असगुन लंका होंय"

राम अवध से चलते हैं और असगुन लङ्का में होते हैं।

३—सीताहिं ले दशकंध गयो पै गयो है बिचारो समुन्दर बाँध्यो।

४—"परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिसाद बसेरे॥"

+असंगति दूसरी।

कहीं करने का काम कहीं किया जाय:—

१—"पाइन की सुधि भूलि गई, अकुलाय महावर आँखिन दीन्हों"

२—"बंसी धुनि सुनि भज-बधू चली बिसारि बिचार।
भुज-भूषन पहिरे पगनि भुजन लपेटे हार॥"

३—"दिय अंजन अधरान कृत दृगनि खवाये पान।

यहाँ आँखों के लगाने का अंजन होठों से लगाया है। इत्यादि

× "होत असंगति हेतु अरु कारज औरहि ओर।
कोयल मदमाती भई झूमत अम्बा मौर॥" (काव्य प्रकाश)

+ और ठौर को काम, और ठौर ही कीजिये।
जे कवि हैं मतिधाम, कहैं असंगति दूसरी॥ (अलंकार दर्पण)

×असंगति तीसरी।

जो काम करना हो उससे विरुद्ध कार्य करने लगें—

१—"सुरझन आये जगत में दिन दिन उरझत जाँय"

२—"यह उलट का सों कहों, निकट सुनाय सुबैन।
आये जीवन दैन घन लगे सु जीवन लैन॥"

बादल जीवन (जल) बरसाने आये परन्तु मेरा जीवन लेने लगे।

३—"ज्यों ज्यों सुरझि भज्यों चहै त्यों त्यों उरझत जाहिं"

४—"मोह मिटावन हेतु प्रभु लीनो तुम अवतार।
उलटो मोहन रूप धरि मोही सब ब्रज नार॥"

⑫ विषम प्रथम।

१—विरुद्ध धर्म वाली वस्तुओं का बेजोड़ और अयोग्य वर्णन हो। अर्थात् एक दूसरे का उलटा होने से जहां पर सम्बन्ध न घटे अथवा अनमिल वस्तुओं का वर्णन हो।

कहाँ यह है और कहाँ वह, शब्दों द्वारा प्रथम विषम होता है।

१—"कहँ सुकुमार सुवन दसरथके कहँ कठोर अति रुद्र-चाप है।
कोउ न कहत समुझाय नृपति कों रानी के मन विषम ताप है॥"

× कारन लगे जो काज सोई करै विरुद्ध कहैं।
भाषत हैं कविराज ताहि असंगति तीसरी॥ (अलंकार दर्पण)

तीन असंगत (१) काज अरु कारन न्यारे ठाम
(२) और ठौर ही कीजिए और ठौर को काम
(३) और काज आरंभिये और करिये दौर। (भाषाभूषण)

*"सरल कुटिल के मिलन को ऊधो अधिक अजोग।
कहाँ कान्ह कुबिजा कहाँ कैसे बन्यो सँजोग॥"*

विषम (द्वितीय)

(२) कार्य्य का उलटा फल मिले

—*"खान खनै जो और को ताको कूप तयार।"*
—*"गाडर राखी ऊन को लागी चरन कपास।"*
—*"श्याम सुरभि पय विशद अति गुनद कराहिं ते पान।"*
—उपजै यदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महासुर स्रापवस भये सकल अघरूप॥

यहाँ पुलस्त्य के उज्ज्वल कुल में रावणादि श्याम (पापी) हुए।

---

* बरनै अनमिल · दोय, विषम अलंकृत सोय। (अलंकार दर्पण)
बरनो विषम जहाँ घटना अननुरूप कहाँ यह कहाँ एसो साहस लहाई है।
(कवि-कुल-कण्ठाभरण)

"विषम अलंकृत तीनि विधि, अनमिलवे को संग।
कारन को रंग और है कारज और रंग॥
और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय।
कहँ कोमल तन तीय को, कहाँ विरह की लाय॥
खड्गलता अति स्याम सों उपजी कीरति सेत।
ढलि तादो धन्हार पै अधिक हार उन देत॥" (भाषाभूषण)

⊙ विषम (तृतीय)

कारण के गुण से कार्य का गुण या कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो—

क्रिया विरुद्ध—

१—"नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी-भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरमेरु-सिला-कन होत अजा-खुर बारिधि बाढ़े।
तुलसी जेहि के पद-पंकज से प्रगटी तटनी सो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे पै ठाढ़े॥"

गुण विरुद्ध—

२—"सानी सरल रस मातु बानी, सुनि भरत ब्याकुल भये।
३—"तेरी यह सारी दसा, चकित भई हौं जोय।
मोहन को मोहन गई, आई मोहित होय॥"
४—"शीतल सिख दाहक भई।"

× प्रथम सम

जहाँ दोनों का ठीक ठीक सम्बन्ध अर्थात् समानता है
जैसेः—

---

* विषम भलो उद्योग तें जहाँ बुरो फल होत।
छिरकत नीर गुलाब को हुव तन ताप उदोत॥ (पद्माभरण)
(१)'५ विषम अनमिल दोय को जहँ बरनन दरसात।' (पद्माभरण)
"विषम जो उपजै हेतु तें काज और ही रंग।
गोरे रंग और सरग भये अरुन अनंग"॥ (पद्माभरण)

× "दोऊ अनरूप जहाँ बरनिये 'सम' तहाँ,
कान्ह जोग रची विधि राधिके बनाय के।" (कवि-कुल-कण्ठाभरण)

—"तू दयाल दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ।
मो समान आरत, नहिं आरत-हर तो सो ॥"

—"कोउ न मोसो अधम न तुमसो अधम-उधारन"

—"होरी खेलन श्याम सँग आज साँवरी बाल—
तबही लिये गुलाल कों, आय गये नँदलाल ॥"

—"जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिधि होय मग जाता।"

—"राधिका जैसी सुहाग भरी अनुराग भरो तैसो नंद को बारो"

*द्वितीय सम

जहाँ कार्य और कारण की समता हो ।

—"अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितुबैन ।
ते भाजन सुख सुयस के, बसहिं अमरपुर एन ॥"

पितु-आज्ञा-पालन कारण से, सम सुखादि मिलना कार्य है ।

—"नीच संग अचरज नहीं. लक्ष्मी जलजा आहि"

—"कसन कहहु तुम रघुकुल-केतू तुम पालक सन्तत स्रुति-सेतू"

यहाँ श्रुति-सेतुपालक होना कारण है तथा कहना काम है; दोनों में समानता है ।

---

* अलंकार सम तीनि विधि यथा योग को संग ।
कारज में सब पाइये कारन ही को रंग ॥" (भाषाभूषण)

×तृतीय सम

बिना श्रम के 'उद्यम' करते ही कार्य हो।

१—"जाकी खोज माँहि मैंने बनकों गमन कियो,
बिन दुख पायो ताहि अपने सुभाग तें।"

२—"छुअत टूट रघुपतिहिं न दोषू"

३—"सेतु-बन्ध भई भीर अति, कपि नभपन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥"

*विचित्र अलङ्कार

जहाँ किसी फल को प्राप्त करने के लिये विपरीत प्रयत्न किया जाय।

१—"प्राण देते धर्म पर हैं अमर होने के लिये,
आदर्श जीवन है यही, उपदेश पाने के लिये॥"

यहाँ प्राण देना तथा अमर होना विपरीत अर्थ बोधक है

२—"करिबे को उज्वल सुधा सों अभिराम देखो,
मन घन-श्याम रँगती है स्याम रंग में॥"

श्याम रंग में उज्ज्वल करना विचित्र बात है।

३—"अमर होन को समर में जूझत पुरुष पुनीत।

यहाँ लड़ाई में अमर होना विचित्र फल है

× "श्रम बिनु कारज सिद्धि जो उद्यम करते होय"
"कारज सिद्धि बिना श्रम होय, अलंकार सम तीजो सोय" (अलंकारदर्पण)

* "फल विपरीत को जतन सों विचित्र,
हरी ऊँचे हेत वामन में बलि के सदन मैं॥ (हरि-कुल-कण्ठाभरण)

* प्रहर्षन (प्रथम)

जहाँ बिना प्रयत्न के इष्ट सिद्ध हो—

१—"तू हो चुका था जिससे निरास,
पाया उसे आप बिना प्रयास।
चिन्ता नहीं है अब अन्य कोई,
होगा न तेरे सम धन्य कोई॥"

२—"सोचत पन्थ रहेउ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती"॥

यहाँ राम के दर्शन की इच्छा बिना प्रयत्न के सिद्ध हुई।

३—"*नाथ सकल साधन मैं हीना। कीनी कृपा जानि जन दीना*॥

४—'*मज्जन फल देखिय तत्काला। काक होय पिक बकहु मराला*'॥

× प्रहर्षन (द्वितीय)

जहाँ इच्छा से अधिक फल मिले—

१—"*रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,*
हयन की हौंस किये हाथी पाइयत है"।

२—*सुनत बचन बिसरे सब दूसा। तृषावन्त जिमि पाय पियूषा*॥

३—"*इक फल चहि पूजत सिवहिं, तुरत लेइ फल चारि*॥"

४—"*फिरत लोभ कौड़ीन के लाख बेचवे काम।*
गोप-ललिन पायो गलिन महा इन्द्रमनि श्याम॥"

---

* "वांछित फल सिधि जतन बिनु प्रथम प्रहर्षण होय।" (पद्माभरण)

× वांछित फल हू तें अधिक बिनु श्रम मिलि है आय।
दीपक को उद्यम कियौ सूर उदै भये आय॥" (पद्माभरण)

* तीसरा प्रहर्षण

जहाँ अधूरे यत्न में ही पूरा फल मिल जाय।

१—"मैं आरहा था आज तुझ से भेंट करने के लिये।
तब तक स्वयं तूने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिये॥"
ऐसे शकुन से क्यों न मेरा मन सुमन जैसा खिले?
क्या पूछना है फिर भला, यदि दृष्टि भी आकर मिले।

यहाँ पूरा प्रयत्न करने से पहिले ही फल की प्राप्ति हुई।

२—"हरि-हित तरु करिवे चल्यो, मिले पाँच हरि आय"

३—"यहि विधि मन विचार कर राजा। आयगये कपि सहित समाज.

× विषादन

जहाँ इच्छा के विरुद्ध फल मिले।

१—"एक विधातहिं दूषण देहीं। सुधा दिखाय दीन विष जेहीं"
"लिखत सुधाकर लिख गा राहू। विधि गति वाम सदा सब काहू"

२—कल मिलता युवराज पद मिला आज वनवास"

३—"जाहे हौ, खिलि है कमल जब निसि बीते परभात।
यह सोचत अलि-कोसगत ग्रस्यो द्विरद जलजात॥"

सूर्यास्त के समय, कमल पुष्प में बैठा हुआ भ्रमर, फूल के बन्द होने पर, उसी में रह गया और सोचने लगा कि प्रभात होगा, तब कमल खिलेगा, मैं छूटूंगा, इतने ही में हाथी आया और भौंरे सहित कमल को खा गया।

---

* "सोधत जाके जतन को वस्तु चढ़ै कर आन।
निधि अंजन की औषधी सोधत लयो निदान॥"

× "जो विषाद चित चाह ते उलटो कछु ह्वै आय" (भाषाभूषण)

अधिक

इसके दो भेद हैं:—

१—वास्तव में आधेय की अपेक्षा आधार छोटा हो किन्तु आधार के गौरव के लिये अपने बड़े आधेय से भी उसे बड़ा कहा जाय—

"व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद ।
सो अज प्रेमभक्ति बस कौसिल्या की गोद ॥"

२—वास्तव में आधार की अपेक्षा आधेय छोटा हो किन्तु गौरव लिये अपने आधार से भी बड़ा कहा जाय:—

"सुन पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेह समात न गाता"
"बहुत उछाह भवन अति थोरा । मानहुँ उमँगि चल्यो चहुँ ओरा"

अल्प।

आधेय की सूक्ष्मता से बड़ा आधार भी सूक्ष्म कहा जाय।

"अँगुरी की मुँदरीहु अब कर में ढीली होति ।"

---

* "अधिक सु अधिक अधार तें जो आधेय अधिकाय ।
अष्टादस पद चारि में हरि-चरित्र न समाय ॥" (पद्माभरण)

"अधिक अधिक आधेय ते जहाँ अधिक आधार ।
है त्रिभुवन जा में सु प्रभु सोवत सिन्धु मझार ॥" (पद्माभरण)

अल्प अल्प आधेय तें सूक्षम होय आधार ।
अँगुरी की मुँदरी हनी भुज में करति विहार ॥ (भाषाभूषण)

पद्माकर ने अल्प दो प्रकार का कहा है:—

१—"अल्प अल्प आधेय तें जु लघु आधार लखाय
छला छिगुनिया छोर को भो भुज भूषण आय"

२—"अल्प अल्प आधार ते जहँ आधेय बखान ।
... सूक्षम जो मन रहै ताहू ते लघु मान"

यहाँ मुँदरी का घेरा अति सूक्ष्म है, दुःखों के कारण आधेय 'उँगरी की मुँदरी' कर में ढीली हो गई, इससे आधार 'कर' की सूक्ष्मता सिद्ध हुई।

इसके तीन भेद हैं:—

(१) जहाँ पर बिना प्रसिद्ध विशेष-आधार के आधेय की स्थिति हो (२) जहाँ एक ही वस्तु अनेक स्थान पर एक ही काल में रहे। (३) जहाँ एक काम के करने में अन्य असम्भव कार्य हो जाय।

१—"देह नसेहू जासु यश रह्यो जगत में छाय।"

"माया मरी न मन मरयो मर मर गये सरीर।
आशा तृष्णा ना मरी कह गये दास कबीर॥"

२—जल, थल, घन, उपवन, नदी सागर अरु गिरिराज।
मामासा! तव धवल जस रह्यो जगत में भ्राज॥"

३—"राज दरस आरंभ तें कल्प वृक्ष लरि लीन॥"

यहाँ राजा के दर्शन के कार्य में कल्प वृक्ष के दर्शनों का होना असम्भव कार्य का कथन है।

× अन्योन्य

जहाँ दो वस्तु आपस में एक का दूसरे की शोभा या प्रिय की हेतु हों; जैसे:—

१—"ससि से निसि नीकी लगे, निसि ही में ससि सार"

× "[illegible] दुहु में जहाँ सो अन्योन्य विधान।
पिय को मन मैं [illegible] में पिय मन में [illegible]॥" ([illegible]
सो अन्योन्य जहँ परस्पर वस्तु [illegible] ([illegible]

—"*सर की सोभा हंस है, राजहंस की ताल।*
करत परस्पर है सदा, गुरुता प्रगट विसाल ॥"

यहाँ सर (ताल) की शोभा हंस से और हंस की शोभा ताल से है।

—"*गोरे रँग से श्याम, लसत गोराई श्याम लहि।*
घन तें दामिनि काम, दामिनि ते घन घन फबै ॥"

यहाँ श्याम और गोरे तथा मेघ और बिजुली की परस्पर शोभा है।

×कारण माला।

जहाँ पहिली कही हुई बात दूसरे कार्य का कारण होती चली जाय।

१—'*सच्चा जहाँ है अनुराग होता,*
वहाँ स्वयं ही बस त्याग होता।
होता जहाँ त्याग वहाँ सुमुक्ति,
है मुक्ति के सम्मुख तुच्छ भुक्ति ॥'

यहाँ अनुराग हेतु त्याग का, और त्याग हेतु मुक्ति का है।

२—"*क्रोध कि द्वैतक बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।*"

३—'*होत लोभतें मोह, मोहहिं ते उपजे गरब।*
गरब बढ़ावे कोह, कोह कलह कलहहु व्यथा ॥

यहाँ मोह इत्यादि परस्पर पहिली कही हुई बातें पीछे कही हुई बातों का कारण हैं।

× "पूर्व हेतु उत्तरहिं को कारणमाला होय"
यह हेतु न को गहिये जहाँ कारणमाला कहिये तहाँ (अलंकार दर्पण)

४—क्रत ते सत सत ते सुपस यस ते दिवि महँ वास ॥
५—धर्म ते निरत जोग ते ज्ञाना । ज्ञान मोक्ष-प्रद वेद बखाना॥

+ एकावली ।

सिलसिले वार अनेक अर्थों को विशेष्य-विशेषण भाव से स्थापित व निषेध करें अर्थात् ग्रहण और त्याग या निषेध की रीति हो, वहाँ एकावली अलङ्कार होता है।

१—"विद्या वही जाते ज्ञान बढ़े अरुज्ञान वही करतव्य सुझावे।
है करतव्य वही जग में दुख आपने बंधुनि को बिनसावे ॥
बंधु वही जो विपत्ति हरे औ विपत्ति वही जो कि वीर बनावे
वीर वही अपने तन को धन को मन को पर-हेत लगावे ॥

यहाँ पहिले ग्रहण फिर निषेध सिलसिले वार किया है।

२—"उस ज्ञान का मान ही क्या है, जिससे कर्तव्य न जाना जाय; और उस कर्तव्य की महत्ता ही कितनी है जो स्वार्थवश किया जाय।"

३—कूरम पै कोल कोलहू पै शेष कुण्डली है, कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की। कहै पदमाकर त्यों फन पै फबी है भूमि, भूमि पै फबी है सिरी रजत पहार की। रजत पहार पर सम्भु सुरनायक है,

---

गहत मुक्त पद रीति जब एकावलि तब मान।
(भाषाभूषण)

शम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की। शम्भु जटाजूटन पै
चन्द की छुटी है छटा चन्द की छटान पै छटा है गंगधार की।

यहाँ पहिले धूरमादि का ग्रहण फिर उनका त्याग है।

४—"बिनु गुरु होय कि ज्ञान ज्ञान कि होय बिराग बिनु"

५—'सो नहिं जल जहँ सरसिज नाहीं, सरसिज नहि जहँ अलि न लोभाई।
अलि नाहिं जो कल गुञ्जन हीना, गुञ्जन नहि जु मन न हरि लीन्हा" ॥

÷व्याघात (प्रथम)

जहाँ जिस कारण से जो कार्य होना चाहिये वहाँ उससे दूसरा कार्य हो वहाँ प्रथम व्याघात होता है।

१—"जो सबको सुख देत है आज मोहि दुख देत।"

२—"रहत सदा रक्षक भुवन कृष्ण-सुदर्शन-चक्र,
धर्म-विरोधी-खलनि कौ भयो आज वह चक्र ॥"

३—"जो जग की सब को हरत, सोई जीविका देत।"

"नाम प्रभाव जानि शिव नीके। कालकूट फल दीन अमी को"
"देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि डर उपजावा"

यहाँ कालकूट का उलटा फल अर्थात् अमर कर दिया तथा सुन्दर बसन्त से सुख के स्थान में डर पैदा हुआ।

÷ व्याघात जु कछु और तें कीजे कारज और।
बहुरि विरोधी ते जबै काज स्वारत ठौर ॥ (भाषाभूषण)

× व्याघात (द्वितीय)

उलटी क्रिया करने पर भी कार्य सिद्ध हो वहाँ दूसर व्याघात होता है।

"निहचै जानत बाल तो करत काह परिहार"

लड़ाई पर बालक को न ले जाने के समय बालक कहता है कि जो नादान बालक समझते हो सो ले क्यों नहीं चलते।

"ऐसे बचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तो पुनि विषम वियोग दुख सहिहै पामर प्रान॥"

जीवन को बतला कर मरन दृढ़ किया।

"लोभी धन संचै करे, दारिद को डर मानि।
दास यहै डर मानि के दान देत है दानि॥"

यहाँ 'दारिद को डर मानि' कारण को उलटा सिद्ध करके भी दान देने का कार्य सिद्ध किया।

❀ सार

अनेक बातों में क्रमशः एक बात से दूसरी का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष दिखाया जाय।

१—*"प्रथम कछु जिसे था कल्पना ने दिखाया।*
फिर जब तब था, सो स्वप्न में दृष्टि आया॥"
"हे हृदय! वही क्या सामने आगया है!
तुझ पर यह कैसा मोह सा छा गया है॥"

× बहुरि विरोधी ते जहाँ लहिये कारज ठौर॥ (भाषाभूषण)

❀ एक एक ते अधिक बखानों, सार अलंकृत सोई मानों (मानस रहस्य)

पहले कल्पना में, फिर स्वप्न में, फिर प्रत्यक्ष इस प्रकार उत्तरोत्तर उत्कर्ष का कथन है।

२—"मधु सों मधुरी है सुधा कविता मधुर प्रमान।"

यहाँ मधु से सुधा, सुधा से कविता मधुर है अर्थात् उत्तरोत्तर उत्कर्ष दिखाया है।

३—'सब मम प्रिय, सब मम उपजाये।
सबते अधिक मनुज मोहि भाये॥
तिन महँ द्विज, द्विज महँ श्रुति-धारी।
तिन महँ निगम नीति अनुसारी॥
तिन महँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी।
ज्ञानिहु ते प्रिय अति विज्ञानी॥

यहाँ वर्ण्य विषयों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष है।

जग में जीवन सार है तासों सम्पति सार।
सम्पति सों गुन सार है गुन सों पर उपकार॥

क्रम से सारोत्कर्ष कथन है

अपकर्ष १—"एक मंद मैं मोह बस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान॥"

२—"अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी॥"

इन उदाहरणों में अपकर्ष क्रमशः दिखाया गया है।

× यथासंख्य।

जहाँ क्रमशः कथित पदार्थों की व्याख्या करके फिर अन्वय मिला दिया जाय; जैसे:—

१—"राजत गँभीर मरजाद में कुसल धीर,
करत प्रताप पुंज प्रगटत आठौ जाम
चहुवान मुकट प्रकासित प्रबल आज,
तेरे त्रास त्रसित नसाये सत्रु धाम धाम॥
नीति निपुनाई धरि पालत प्रजा को नित,
साहिबी में सुन्दर अमंद ह्वै बढ़ायो नाम।
पारावार सदस प्रियव्रत प्रभाकर से,
पारथ से, पृथु से, पुरंदर से राजाराम॥

यहाँ राजा रामसिंह का वर्णन है—

'राजत गंभीर······धीर' का पारावार और 'करत···जाम' से प्रभाकर (सूर्य्य) और शेष बातों का पारथ, पृथु पुरंदर से क्रमबद्ध अन्वय है।

२—राम-प्रेम-भाजन भरत बड़ी न यह करतूति।
चातक हंस सराहियत टेक बिबेक बिभूति॥

चातक में टेक और विवेक में हंस का क्रमशः अन्व

"यथासंख्य वर्णन जिते वस्तु अनुक्रम संग।
करि भरि मित्र विपति को भंजन रंजन अंग॥ (

❀ पर्य्याय

जहाँ (१) अनेक वस्तुओं का क्रम से एक आश्रय कहा जाय।
(२) एक वस्तु के क्रमानुसार अनेक आश्रय कहे जाँय।

(१) *"अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।"*
यहाँ तीनों गुण तीनों रंग एक आँख के आश्रित हैं।

(२) *"पीछे पीछे आवत अँधेरी सी भँवर-भीर,*
आगे आगे फैलत उज्यारी मुख-चन्द की।"
यहाँ अँधेरी और उज्यारी एक ही नायिका के आश्रित हैं।

(३) *"रोम रोम प्रति राजहीं कोटि कोति ब्रह्माण्ड।"*

(४) *अमृत भरे दरसें प्रथम मधुर खलन के बैन।*
मोह हेतु पीछे बने अन्तर विष दुख दैन"॥

एक वस्तु के अनेक आश्रयः—

१—*"सती विधात्री इन्दरा देखीं अमित अनूप।*
जेहि जेहि भेष अजादि सुर तेहि तेहि मति अनुरूप।"

२—*'बाल युवा अरु वृद्ध महँ बढ्यो रोप तिहिकाल'*

❀ "है पर्य्याय अनेक को क्रम सों आश्रय एक।
फिर क्रम सों जब एक वह आश्रय धरै अनेक॥"
हुती तरलता चरन में भई मंदता आय।
अम्बुज तजि तिय-बदन-दुति चन्दहि रही समाय॥" (भाषाभूषण)

(७) परिवृत्ति (परिवर्त्तन)*

क्रम से या क्रम भंग करके जहाँ, अधिक न्यून अथवा स[म]
वस्तु के बदले में अधिक न्यून व सम वस्तु ली जाय:—

१—"तन मन निज अर्पण करे पावे भक्ति अनन्य।"

सर्वस्व के बदले में अनन्य भक्ति (सम)।

२—"तारा विकल देखि रघुराया, दीन्ह ज्ञान हरि लीनी माया"

१—"धर्म देय धन कोउ लीजे"

बड़ी से छोटी का विनमय।

२—"मन-मानिक दीन्हों तुम्हें लीनी विरह बलाय"

भली वस्तु के बदले में बुरी ली।

३—अस्थि-मालमय देइ तनु मुण्डमालमय लेहि।

हे हर! तो सेवा किये कहा लाभ नर पैहि॥"

न्यून गुण वाली वस्तु के बदले में न्यून गुण वाली।

"तीन मुष्टि दे नाज लिय तीन लोक को राज"

यहाँ नाज के बदले राज लिया नाज न्यून तथा राज अधिक

---

* परिवर्तन उलटौ जहाँ कछु लैके कछु देय।
लेत सम्पदा सम्भु की देत पत्र एक सेय॥ (भाषाभूष[ण]

थोड़ो दै बहुत लीजै आपस में जाने सब ऐसी रीति परिमित परिव्रत वेद[...]
नेक मन देके तन लीन्हों अपनाय कान्ह, कहै कवि दूलह ये रचना बिदेह[...]
(कवि-कुल-कण्ठाभ[रण]

× परिसंख्या

अन्य स्थानों में निषेध करके किसी वस्तु का केवल एक ठौर पर वर्णन किया जाय। यह 'बर्जन' कहीं तो 'नहीं' आदि वाचकों से और कहीं केवल व्यंग से ही किया जाता है।

"पायो गुरुज्ञान तब पाइवो न रह्यो कछु,
गायो राम नाम तब गायबो कहा रह्यो ॥"

गुरु-ज्ञान के आगे अन्य "पाने" और राम नाम के आगे अन्य "गाने" का वर्ज्य है।

"विद्या ही मनुष्य का रूप है, सुसज्जित वस्त्र और रत्न-जटित अलंकार नहीं।"

(नहीं) पद द्वारा अन्य आभूषणों का वाच्य वर्ज्य है

लाभ क्या है ? भगवत भक्ति,

उत्तर में ध्वनि है "भगवत भक्ति के अतिरिक्त अन्य लाभ नहीं।"

"दंड यतिन कर, भेद जहँ नर्तक नृत्य-समाज"

'राम राज्य में दंड, भेद कहीं नहीं रहा' यह प्रत्यक्ष निषेध न करके इस प्रकार कहा कि दंड (लकड़ी) साधुओं पर और भेद (अन्य का रूप बनाना) नाट्यकारों में रह गया, अर्थात् राम राज्य से दण्ड-भेद मिट गया।

× "परीसंख्या इक थल बरजि दूजे थल ठहराव" (मानस रहस्य)
"एक मे बरजि जहाँ दूजे थल धरै वस्तु, तहाँ परिसंख्या कवि कहत है संदेह मे।" (कवि-कुल-कल्पाभरण)

❀ विकल्प।

जहाँ दो तुल्य बल वाली विरुद्ध बातों में 'या तो यह होगा या यह' ऐसा वर्णन हो, वहाँ "विकल्प" अलंकार होता है:—

१-"जन्म कोटि लगि रगर हमारी। वरौं सम्भु नतु रहौं कुमारी'

२-'की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि-करतब कछु जात न जाना"।

३—'प्रभु सौख्य दो स्वातन्त्र का अथवा हमें अब मृत्यु दो।'

४—'होवहु जीवन मरण वा कबहुँ न छाँड़हु धर्म।'

५—"रे रावन गहु राम की सरनी कै धनुबान।"

अथवा, या, नतु, कै, कि, इत्यादि विकल्प के वाचक हैं।

प्रौढ़ोक्ति (बढ़ा हुआ कथन)

जहाँ उत्कर्ष का अहेतु, हेतु कल्पित किया जाय।

"यमुना-तीर-तमाल सम, यदु-पति की तन-कान्ति।

तमाल वृक्ष में यमुना के तीर पर होने से कुछ विशेषता नहीं हो जाती; इस लिये उत्कर्ष का अहेतु है, परन्तु श्याम तन की कान्ति की तुलना में 'यमुना-तीर-तमाल' उत्कर्ष का हेतु कथित है।

---

* "है विकल्प 'यह कै वहै' इहि विधि को वृत्तान्त।
करि है दुख को अन्त अब अब कै प्यारो कन्त॥" (भाषाभूषण)
"द्वैसम बलजुत को विरुध जहँ सुविकल्प बखान" (मानस रहस्य)

+ "प्रौढ़ोक्ति उत्कर्ष बिनु हेतु कहैं जब काम।
केस अमावस रैनि घन सघन तिमिर सम स्याम॥" (भाषाभूषण)

"तेरो जस सुर-सरित के पुण्डरीक सो सेत"

यहाँ गंगा में होने वाले कमल में कुछ अधिक श्वेतता नहीं हो जाती परन्तु तो भी इसको श्वेतता का कारण कथन किया है।

"काम-कलभ-कर भुज बल सींवा।"

कामदेव के हाथी में कोई विशेषता नहीं किन्तु तो भी अहेतु को हेतु कथन किया है।

"ईस सीस के चन्द सौं अलप आठ हू जाम।
सुरसरि तट के बरफ़ तें धवल सुजस तुव राम॥"

यहाँ पर ईश के शीश-चन्द्र में कुछ विशेषता न होगी अथवा गंगाजल की बरफ़ कुछ अधिक श्वेत नहीं परन्तु उत्कर्षता दिखाई गई है।

⊛ संभावना।

यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है, संभव में तो केवल "ऐसा होना सम्भव है" कथन किया जाता है किन्तु सम्भावना में कुछ शर्तें होती हैं:—

'जो तुम आवत मुनि की नाईं। तो पद-रज सिर धरत गुसाईं।'

---

* ऐसो कहूँ होय करै तरक सो "सम्भावना"
लाख जीभ होय तब तो गुन बखानिये। (कण्ठाभरण)

"जो यों हो तो यों कहै सम्भावना विचार।
वक्ता हो तो शेष जो कह तो गुनन अपार॥" (भाषाभूषण)

१—राम बाहु फरकत मिले, जो हरि जीवन-मूरि।
तौ तोही मों मेटिहो राति दाहिनी दूरि॥

यहाँ पहिले कारण कथन किया गया है फिर कार्य का कथन हुआ है।

२—'जो छवि सुधा-पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदर शृंगारू। मथै पाणि-पंकज निज मारू॥
"यहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल"

३—"ऊधौ जो होतो कछू मज-वासिन सों प्यार।
तो मथुरा से आवते कान्ह एक हू बार॥"

४—"जो कहुँ होते आप में द्वै अरविन्द अमंद।
तो तेरे मुख-चन्द की उपमा लहतो चन्द॥"

यहाँ दूसरे कार्य स्वरूप पद का पहिला पद कारण स्वरूप है।

+ विकस्वर।

विशेष को सामान्य से पुष्ट कर के फिर विशेष का कथन हो।

"राम-गमन-सुनि सिय दुखित, पिय बिनु जीवन भार।
ज्यों जल के निघटत तुरत कमल होत हैं छार॥"

+ विकस्वर होत विशेष अब फिर सामान्य विशेष।
हरि गिर धार्यौ सत पुरुष भार धरैं जों शेष॥
"कहि विशेष सामान्य कहै पुनि बहुरि विशेष बखानै।
क्यो विकस्वर अलंकार यह चतुर होय सो जानै॥ (अलंकार दर्पण)

'राम के बिना सीता का दुखित होना' इस विशेष कथन का 'पिय बिनु जीवन भार' सामान्य से पुष्ट किया फिर 'बिना जल के कमल का जलना' इस विशेष का कथन किया है।

× मिथ्याऽध्यसति।

(मिथ्या-अध्यवसति, ऐसा ही हो)

झूठ शब्द स्पष्ट न कह कर मिथ्या-कल्पना द्वारा झूठ सिद्धि किया जायः—

> *"बन्ध्या-पुत्र ख-पुष्पहिं तोरे।*
> *तव तोते रन में दृग जोरे॥"*

"आकाश पुष्प तोड़ने वाला बन्ध्यापुत्र ही लड़ सकता है"—इस कल्पना से युद्ध का मिथ्यात्व सिद्ध किया है अर्थात् तुझ से कोई नहीं लड़ सकता।

> *"शश-सींगन के धनु लिये गगन-कुसुम धरि माल।*
> *खेलत बन्ध्या-सुतनि सँग तव अरिजन छितिपाल॥"*

अर्थात् तेरा कोई वैरी नहीं है यह कथन शशे के सींग, आकाश-पुष्प और बन्ध्या पुत्रों की मिथ्या कल्पना द्वारा किया गया है।

झूठे कारन में विधि नीकी झूठी रचना कीजै।
मिथ्याध्यवसति अलंकार यह समुझि चित्त में लीजै॥
(अलंकार दर्पण)

तुल्ययोगिता ।

(१) जहाँ अनेक उपमेय अथवा अनेक उपमानों का एक धर्म कथन किया जाय (२) हित-अनहित में एक सी वृत्ति रहे। इसके तीन भेद हैं:—

१—(अ) अनेक उपमानों का एक धर्म:—

"कालिन्दजा के सु-प्रवाह की छटा,
विहंग क्रीड़ा कल नाद माधुरी ।
उन्हें बनाती न अतीव मुग्ध थी,
अनूपता कुंज-लता-वितान की ॥"

यमुना के सु-प्रवाह की छटा, पक्षियों की क्रीड़ा और उनकी सुन्दर बोली तथा कुञ्जलता-वितान की सुन्दरता आदि अनेक उपमानों का यह एक ही धर्म कहा है:—

'उन्हें अतीव मुग्ध न बनाती',

(ब) अनेक उपमेयों का एक धर्म:—

"सब कर संशय अरु अज्ञानू । मंद महीपनि कर अभिमानू ॥
भृगुपति गर्व केरि गरुआई । सुर-मुनिवरन कोटि कदराई ॥
सिय कर सोच जनक पछिताया । रानिन कर दारुन दुख दावा ॥
सम्भु-चाप बड़ बोहित पाई । चढ़े जाय सब संग बनाई ॥"

यहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म 'चढ़े' कथन किया है ।

तुल्ययोगिता तीनि ए लच्छन क्रम ते जानि ।
(१) एक शब्द में हित अहित, (२) बहु में एकै बानि ॥
(१) बहु को समता गुननि करि, इहि विधि भिन्न प्रकार ।
(१) गुन-निधि नीके देत तू, तिय को अरि को हार ॥
(२) नवजल की बदनदुति अम सकुचत अरविंद ।
(३) तुही श्रीनिधि धर्मनिधि तुहीं इंद्र अरु इंदु ॥ (भाषा भूषण)

२—हित अनहित में एक सा वर्त्ताव:—

"नीति-निपुन निन्दा करें चाहे अस्तुति भूरि।
लाख कोटि घर में भरें अथवा धन हो धूरि॥
नसें आज ही प्रान या जुगलों जीवित सोय।
न्याय-पंथ तें एक पग धीर न बिचलित होय॥"

३—जहाँ उत्तम गुण वाले उपमानों के साथ उपमेय की तुल्यवृत्ति हो:—

"कामधेनु औरें कामतरु चिन्तामनि मन मानि।
चौथो तेरो सुजसहू है मनसा के दानि॥"

कामधेनु आदि उत्कृष्ट अवर्ण्यों के साथ वर्ण्य सुजस की तुल्य वृत्ति है।

"नित्य नेम करि अरुन उदय जब कीन्ह।
निरखि निसाकर नृप-मुख भये मलीन॥"

यहाँ नृपमुख वर्ण्य तथा निशाकर अवर्ण्य दोनों मलीन हुए।

❀ समुच्चय (प्रथम)

जहाँ कार्य करने को एक कारण रहते हुए भी अनेक कारण, उसे पूरा करें—"किसी का मत है कि एक साथ कई भाव पैदा हों।"

"ग्रह-ग्रहीत, पुनि बात-बस, तेहि पर बीछी मार।
ताहि पियाइहि बारुनी-कहो कौन उपचार॥"

"❀ बहु मिलि हेतु करै जु इक काज समुच्चय जान।
कुमति कुसंगति काम ये सब बौरावत प्रान"॥ (पद्माभरण)

यहाँ महन्महात्व आदि एक ही कारण नष्ट करने को समर्थ होने पर अन्य कारणों के योग से कार्य हुआ।

"पर विष्णु-पदी बहती इस में
रवि की तनया रहती इस में।
अघनाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर शान्ति जहाँ।"

यहाँ गंगा, यमुना तथा अनेक तीर्थ पृथक्-पृथक् शान्ति देने में समर्थ होने पर तीनों के योग से "शान्ति प्राप्ति" का वर्णन है।

× समुच्चय (द्वितीय)

जहाँ अनेक गुण तथा अनेक क्रियाओं का एक ही काल में कथन किया जाय अथवा एक कार्य को अनेक साधन करें। क्रियाओं का एक साथ कथन—

"तव प्रवंचित हे वन घूमती,
विवश सी कितनी ब्रजगोपिका।
युग-विलोचन वारि विमोचती,
ललकती कँपती अवलोकती॥"

यहाँ ललकना, कँपना और देखना क्रियाओं का एक साथ कथन है।

× "दोय समुच्चय भाव बहु कछु इक उपजै संग।
एक काज चाहैं कियो है अनेक इक अंग"॥ (भाषा भूषण)
"दुव भरि भाजत गिरत फिर, भाजत है घतराय।
जोवन बिना मदन घन, मद उपजावत भाय"॥

कित चिंत मुँदरी पहिचानी । हर्ष-विषाद हृदय अकुलानी ।"

गुण और क्रिया का एक साथ कथन भी होता है:—

आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर प्रभु फल एका ॥
पद-पंकज प्रीति निरंतर । भव साधन कर फल यह सुन्दर ॥

गुणों का एक साथ कथनः—

"किस तपोबल से किस काल में,
सच बता मुरली-कल-नादिनी ।
अवनि में तुझ को इतनी मिली,
मधुरता, मृदुता, मनहारिता ।"

अन्तिम पंक्ति में तीन गुणों का एक साथ कथन है ।

× समाधि (विशेष समर्थन)

संयोग वश अन्य कारण के मिलने से कार्य सुगम होजायः—

"विनय यसोदा करति है, गृह चलिये गोपाल ।
घन गरज्यो बरसा भई, भागि चले नँदलाल ।।"

घर चलने के लिये यशोदा खुशामद करती हैं; तब तक मेह आगया और श्रीकृष्ण भाग कर घर चले।

वचन सुनत मन कवि हरषाना । भई सहाय सारद मैं जाना ।।

"सो समाधि कारज सुगम और हेतु मिलि होत
उत्कण्ठा तिय को भई अथयो दिन उद्योत" (भाषाभूषण)
सुगम काज है जाय आन हेतु के संग सों ।
सो समाधि ठहराय, लीजे मन में समझि के (अलंकार दर्पण)

× प्रत्यनीक।

जहाँ बलवान से बस न चले और उसके सम्बन्धी अथवा हितैषी का अनादर किया जाय।

> *"सूर्य्य ताप से तपित है जात सरोवर तीर।*
> *प्रतिहिंसी गज कोप करि कमलनि करत अधीर॥"*

यहाँ हाथी का बलवान सूर्य्य से कुछ बस न चलने पर उसके मित्र कमल को दुख देता है।

+ ललित (सुन्दर)

किसी बात को स्पष्ट न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहा जाय।

१—*"आये नाग न पूजिये बाँबी पूजन जाँय।"*

यहाँ किसी प्रस्तुत व्यक्ति को जिसने अवसर निकल जाने पर पीछे कार्य का आयोजन किया है कथन है उसको स्पष्ट न कह कर "आये नाग न······।" प्रतिबिम्ब रूप से कहा है।

२—*"पानी पी घर पूछनो नाहीं भलो विचार।"*

× प्रत्यनीक सो प्रबल रिपु ता हित सों करि जोर।
नैन समीपी श्रवण पर कंज चढ़यो करि दोर (भाषाभूषण)

प्रत्यनीक प्रबल विपक्ष पक्ष पै प्रकोप तो मुखामा कंज जानि कोप लहा है। (क० कु० कं०)

+ "ललित कह्यो कछु चाहिये ताही को प्रतिबिम्ब।
सेतु बाँधि करिहै कहा उतरि गयो सब अम्ब॥ (भाषा भूषण)

—*"सुनिय सुधा देखिय गरल यह करतूति कराल ।*
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥"

"यहाँ राम-राज्य-अभिषेक सुन कर बन-यात्रा देखी गई" स्पष्ट न कह कर सुधा, गरल, काक, उलूकादि तथा मराल का बिम्ब रूप कथन है ।

और भी—

—*"मरयो चहत फल अमृत को विषतजिन को बोय"*

अर्थात् बुराई करके भलाई नहीं होती ।

* अर्थान्तरन्यास ।

जहाँ सामान्य से विशेष का और विशेष से सामान्य का र्थन किया जाय ।

—*"दान दीन को दीजिये हरै दरिद की पीर ।*
औषधि ताको दीजिये जाके रोग सरीर ॥"

'आवश्यकता वाले को दान देना चाहिये' इस सामान्य को, गी को दवाई देने के' विशेष कथन से पुष्ट किया है ।

—*"तुम ने दयामय प्रथम तो सब भाँति अपनाया हमें ।*
किस दोष से अब दूर कर यह दुःख दिखलाया हमें ॥
तजते उसे न कभी जिसे स्वीकार करते वीर हैं ।
विपरीत भाव कहाँ कभी, धारण न करते धीर हैं ॥"

---

* जहँ सामान्य विशेष को करै समर्थन अर्थ ।
है अर्थान्तरन्यास कहि अर्थहिं उलट समर्थ ॥ (पद्माभरण)

यहां आधे छन्द के विशेष कथन को आधे छन्द के सा
कथन से समर्थन किया है।

३—"*टेढ़ जानि संका सब काहू, वक्र चन्द्रमहि मते न*

यहाँ सामान्य को विशेष से पुष्ट किया है।

४—"*कारज धीरे होत हैं काहे होत अधीर।*
समय पाय तरुवर फलै केतो सींचो नीर॥"

५—"*विपति परेहू देख्यो, सत पुरुषन को धाम।*
राज विभीषण को दियो, वैसी विरियाँ राम॥"

६—"*यह न आचरज बड़ेन को जग-दुर्लभ कछु नाहिं।*
हरि त्याग्यो हारि कल्पतरु जीति इन्द्र के ताहिं॥"

इनमें भी सामान्य की विशेष से पुष्टि है।

× काव्यार्थापत्ति।

जहाँ यह कहा जाय "जो ऐसा कर सकते हैं उनके लि
ऐसा करना कौनसी बात है"।

"*मुकत भये घर खोय के बैठे कानन जाय।*
घर खोवन जो और को कीजै कौन उपाय॥"

× 'कह कौ कियो तो यह कहा' यों काव्यार्थापत्ति।
जो हर धनु तोरयो, तुम्हैं कहा कठिन रघुनाथ॥' (भाषाभूषण)
"काव्यार्थापत्ति जो जँह हरि विधि वाक्य काम।
कुछ वीरतों का बन्द हो यहां समझ की बात॥ (भाषा भूषण)

*काव्यलिङ्ग

जहाँ युक्ति से वाक्यार्थ और पदार्थ का समर्थन किया जाय। अथवा वाक्य या पद का अर्थ जहाँ हेतु हो।

१—"*विस्व भरन-पोषन कर जोई। ताकर नाम 'भरत' अस होई॥*"

भरत नाम रखने का कारण पहिली पंक्ति में कहा गया है।

२—"*सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं।*
भाँति भाँति के सरस-सुधोपम फल मिलते हैं॥
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नों वाली॥
जो आवश्यक होते हमें मिलते यहाँ पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि! 'वसुधा' 'धरा' तेरे नाम यथार्थ हैं॥"

यहाँ 'वसुधा' 'धरा' नाम होने के कारण पहले कथित हैं।

३—*कैसे शिवराज माँगु देत अवरंगे गढ़*
गोढ़ गढ़पती-गढ़ लीने और रावरे।"

'गढ़ माँगने से कैसे दिये जाते" इस बात का 'और भी गढ़ जब छीन लिये' यह कारण कथन किया है।

४—"*सो नर क्स दसकंध बालि बध्यो जोहि एक सर।*

'वह नर नहीं है' इसका समर्थन 'बालि को एक ही बाण में मारा' कह कर किया।

---

* अर्थ समर्थहिं जोग जो करै समर्थन तासु।
काव्यलिंग तासों कहत जिनके सुमति प्रकास॥

द्वि० लक्षण—हेतु पदारथ तहि कहूँ कहुँ वाक्यारथ पाय।
करै समर्थन अर्थ को काव्यलिंग सो भाय॥ (पद्माभरण)

काव्यलिंग जब युक्ति सों अर्थ समर्थन होय।

उल्लास +।

जहाँ एक के गुण दोषों से दूसरों को गुण दोष प्राप्त हों:—

गुण से गुण—

१—*"तीरथ कहत यह आय के पवित्र करे–*
कोऊ ब्रज-भूमि-चारी अबला अहीर की।"

२—*"जानत तुम्हहि तुम्हहि ह्वै जाई।"*

३—*"देखत अवध को आनन्द*
हरपि बरपत सुमन दिन दिन देवतनि कौ वृन्द।"

दोष से दोष—

१—*"पर दुःख लखि होवें दुखी सज्जन सहृदय वीर।"*

२—*"रहिबो उचित न मलयतरु यहि कुबंस बन माँहि।*
घिसत परस्पर ह्वै अगिन औरहु तरु जरि जाँहि॥"

३—*लङ्क पती सीता हरी बाँध्यो गयो समुद्र।*

गुण से दोष—

१—*होंही निठुराई लेहों प्यारे बलबीर की।*

२—*मान्य लखौ या आक को जलहूँ सों अरिजात।*

दोष से गुण—

१—*जे मृग राम-बान के मारे।*
ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

+ जो गुन दोष तें और के परै अनत गुन दोष।
ताहि कहत उल्लास कवि पाइ किये संतोष॥ (पद्माभरण)
"गुन औगुन जब एक के धरै और उल्लास।
न्हाय संत पावन करै गंग धरै इह आस॥ (भाषाभूषण)

तिरस्कार*

जहाँ गुण वाली वस्तु को भी किसी दोष से त्यागा जाय।

१—"अरब खरब लों द्रव्य है उदय-अस्त लों राज।
जो तुलसी निज मरन है तो आवहि केहि काज॥

२—"शत शत मनुजों के सोच में शुष्क होना।
शत शत मनुजों की नींद के बाद सोना॥
समझ वह सकेगा जानता जो इसे है।
विपुल विभव से सौख्य होता किसे है॥"

३—"जर जाय सोनो जासे नाक छुये।"

४—"जरौ सु सम्पति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ।
सन्मुख होत जो राम-पद करै न सहज सहाय॥"

अवज्ञा (अनादर)†

जहाँ और के गुण दोष से जहाँ गुण दोष न हो।

१—"अमृत है मम युक्ति जो श्वपचन कौ सुख दानि,
रासानि अनादर ते कहा मेरी पुनि कछु हानि।"

---

*"त्यागिय गुनजुत वस्तु को लखिय दोष जो कोय
तिरस्कार भूषण वही कहत सकल मन होय" (भूषण)

† जु गुन दोष कछु और को औरै जहाँ न होय
सु 'अवज्ञा' पर सिंधु में पातक दरसु न जोय (पद्माभरण)

२—"संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धन्ध
३—"दुष्ट न छाँड़े दुष्टता कैसेहु सुरा होय।"
४—"परम सुधाकर किरन तें खुले न पंकज-कोष"
५—"भयो सतसंगी आँदो आँदी ही मती रहे"

अनुज्ञा (अनुमति)÷

अत्यन्त गुण की लालसा से दोष वाली
चाहना की जाय:—

१—" तथापि तू अल्प न भाग्यमान है,
चढ़ा हुआ है कुछ श्याम
अभागिनी हूँ अति मैं, विराजती-
न श्यामता है जिसके शरी

लोक में गौर वर्ण सुन्दर माना है पर
कारण राधिका श्यामरंग की इच्छा करती है।

२-"रामहि चितव सुरेस-सुजाना, गौतम-साप
३-"मानस होउँ वही रसखानि बसों मिलि गोकु
मैं पसु होउँ वही मजको सु चरौं नित नंद
पाहन होउँ वही गिरि को जो कियो मज-
है खग बास करौं सुख सों नित, कालिन्दी-कूल

---

† होत अनुज्ञा दोष कों जो लीजै गुन मानि
[illegible]

यहाँ "कृष्ण-भक्ति" की लालसा से ब्रज का पशुपक्षी होना भी स्वीकार है।

४—"सम्पदा पहेलि संत विपदा सदा सहैं"

५—"*बिपति बराबर सुख नहीं जो थोरे दिन होय।*
हितू मित्र और बाँधवा जानि परैं सब कोय॥"

लेश (भाग या अंश)×

जहाँ गुण को दोष व दोष को गुण माना जाय।

दोष को गुणः—

१—"*नहिं राजा को दण्ड भय नहिं कछु चोर कलेस।*
नाहिं दिवाले ते डरैं धनि दरिद्र को देस॥"

२—*निरधन हीं जग में भलो सोवे टाँग पसारि।*"

३—*"जो नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही॥*

४—*कागा परत न बन्ध में स्तुति-कटु सबद पुकारि।*

गुण से दोषः—

१—"*कैद होत शुक सारिका मधुरी बानि उचारि।*"

२—"*मृगमद जनि यह गरब करि है सुगन्ध विख्यात।*
दीन लीन-बन निज-जनक प्रान हीन करवात॥"

× गुन में दोष में गुन कल्पन सो लेप।
शुक यह मधुरीबानि ते बन्धन लह्यौ बिशेष (भाषाभूषण)

मुद्रा ❀

जहाँ प्रस्तुत अर्थ पर से दूसरा नाम या अर्थ सूचित हो:—

"इकतिय-व्रत-धारी, पर उपकारी, नित गुरु आज्ञा अनुसारी।
निस्संशय-दाता, सब रस ज्ञाता, सदा साधु संगति प्यारी॥
संगर में सूरो, सब गुण पूरो, सरल-स्वभायं सत्य-कहै।
निरदंभ, भगतिधर, विद्यनि-आगर, चौदह नर जग "दुर्मिल" है॥

"दुर्मिल" है कठिनता से मिलते हैं; इस अर्थ के अतिरिक्त "दुर्मिल" छंद का नाम सूचित होता है।

"चन्द्र बिम्ब पूरण भये क्रूर केतु हठ दाप।
बल सों करिहैं ग्रास कह जेहि बुध रक्षक आप॥"

'पूर्ण चन्द्रविम्ब को क्रूरकेतु क्या ग्रास कर सकता है जिसका रक्षक बुध स्वयं है, इस प्रस्तुत अर्थ पर. से पूर्णता को प्राप्त चन्द्रगुप्त का मलयकेतु सर्वनाश नहीं कर सकता जिसका रक्षक बुध चाणक्य स्वयं है, इस अर्थ की सूचना मिल रही है।

"सहस नाम मुनि भनित सुनि 'तुलसी-वल्लभ' नाम।
सकुचति हिय हँसि निरखि सिय धरम धुरंधर राम॥"

यहाँ 'तुलसीवल्लभ से' वृन्दावल्लभ अर्थ की सूचना मिलती है।

❀ मुद्रा प्रस्तुत पद विषै औरै अर्थ प्रकाश (भाषाभूषण)
प्रकृति अरथ पर पद जहाँ सूच्य अरथ के सौंहि
सूचन करै सु होत है मुद्रा भरन तहाँहि (पद्माभरण)
"प्रस्तुत पदन में अरथ और खोजि कढ़ै (काव्याभरण)

"पालिंग लैने में गई पिया सोया पाया।
मैं थी निपट अजान चूक कर पिया जगाया ॥"

यहाँ प्रस्तुत अर्थ पलँग आदि से पालग, सोया और मैथी के नाम निकलते हैं।

रत्नावली ❀

जहाँ सिलसिले में कहे जाने वाले कुछ प्रकृत-अर्थों का क्रमशः वर्णन हो:—

"सात वार में से गये मंगल-बुध-गुरु जान।"

सात जाति में से, मंगल पाण्डित्य और गौरव चला गया, इस वर्णन में मंगल, बुध और गुरुवार प्रकृत-अर्थों का क्रमशः कथन है।

"तुम रस की वर्षा करते हो, सारा मनस्ताप हरते हो।"
"सद्भावाङ्कुर उपजाते हो, सुख के फल सम्मुख लाते हो॥"

यहाँ उक्त वर्णन में वर्षा करना, ताप हरना, अङ्कुर जमाना, फिर फल लाना, इन प्रकृत अर्थों का क्रमशः वर्णन है।

"रसिक चतुरमुख लच्छिपति सकल ज्ञान के धाम"

यहाँ आप रसिक हैं, चतुरों में मुख्य हैं लक्ष्मीवान् हैं और सकल ज्ञान के धाम हैं; इस साधारण अर्थ के सिवाय

❀ रत्नावलि क्रम सों कहत प्रकृत पदारथ वृन्द। (पद्माभरण)
प्रकृत पदारथ क्रम से न्यास, यह रत्नावलि कियो प्रकाश (अलंकार दर्पण)

आप चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, लक्ष्मीपति विष्णु हैं, और सकल ज्ञान के धाम शिव हैं—ऐसा अर्थ है।

"*चारु 'रमा' 'गिरा' गौरी' तोही गुन जोहै है*"

यहाँ पर प्रस्तुत अर्थ में रमा, गिरा गौरी प्रकृत अर्थों का क्रम से वर्णन है।

"*रवि, ससि, कुज, बुध गुरु गुननि, लै बिधि रच्यो नरिन्द*"

यहाँ रवि ससि आदि प्रकृत-अर्थों का क्रम से वर्णन है।

तद्गुण ✕

अपने गुण को त्याग करके पास वाली वस्तु का गुण ग्रहण करने में "तद्गुण अलंकार" होता है।

१—"*स्वाँति-अमृत अहि-मुख परे बनि विष होत उदोत।*"

स्वाँति का अमृत सर्प के साथ विष हो जाता है।

२—"*मोती तेरे अरुन-कर, मूँगा लौं है जात*"

यहाँ लाल हाथों के कारण श्वेत मोती लाल रंग के होकर मूँगा दिखाई देते हैं।

३—"*माल मालती की हिये सोनजुही युति होय।*

४—"*अधर धरत हरि के परत होठ दीठि पट ज्योति।*

हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष सम होति॥"

मालती की माला में सोनजुही की द्युति हो जाती है और बाँसुरी होठ, दीठि और पट-ज्योति के प्रतिबिम्ब से रंगबिरंगी बन जाती है।

✱ गुण से यहाँ रूप, रंगादि से अभिप्राय है।
"तद्गुन तजि गुन आपनो संगति को गुन लेहि।
बेसर मोती अधर मिलि पदमराग छवि देहि॥" (भाषाभूषण)

अतद्गुण ×।

अपने पास वाली वस्तु के रूप, रस और गंधादि गुण का जहाँ ग्रहण न हो।

१—"*कंचन-घट पय सींचिये नीम न मीठो होय।*"

२—"*चन्दन विष लागे नहीं लिपटे रहत भुजंग।*"

३—"*कहा होत पय-पान कराये विष नाहिं तजत भुजंग।*"

४—"*रासो मेलि कपूर में हींग न होति सुगन्ध।*"

५—"*शिवसरजा की जगत में राजति कीरति नौल।*
अरितिय अंजन दृग हरे तऊ धौल की धौल॥"

पूर्व रूप ⊙

जहाँ पर संगति के गुण को ग्रहण करके उसे छोड़ दे वही पहला पूर्व रूप होता है:—

१—"*ऊधो, आदौ तिमिरमय था भाग्य-आकाश मेरा।*
धीरे धीरे फिर वह हुआ स्वच्छ सत्कान्ति-शाली॥"

× "जोई अतद्गुन लीन है जब गुन लागत नाहिं।
पिय अनुरागी ना भयो बसि रागी मन माहिं॥" (भाषाभूषण)
"जहँ न संगति के गुनहिं गहै अतद्गुन ठहरात।
निज-विहीन पयाग न हुव निज-हर-मनि गैव पर॥" (पद्माभरण)
⊙ "पूर्व रूप लै संग गुन, तजि फिर अपनो लेतु।
ह्वै अय गुन ना मिटे दिये मेटन के हेतु॥" (भाषाभूषण)
हेत पदारथ फिर मिटे अपने ते बजवल होय।
दीप बुझाये हू दियो रसना-मणि उद्योत॥ (भाषाभूषण)

ज्योतिर्मालावलित उसमें चन्द्रमा एक न्यारा।
प्यारा-प्यारा-समुदित हुआ चित्त-उत्फुल्ल-कारी॥
आभा-वाले उस गगन में हाय! दुर्भाग्यता की,
काली काली अब फिर घटा है यहाँ घोर छाई॥
हा आँखों से सुविधु जिससे हो गया दूर मेरा।
ऊधो, कैसे यह दुख मयी मेघ-माला टलेगी॥"

पहले भाग्याकाश अंधकार मय था; पुनः श्रीकृष्ण रूपी चन्द्रमा से कुछ प्रकाश हुआ, फिर अब अँधेरा हुआ।

२—"*हीरा भो मानिक बरन हँसतहि भयो सु सेत।*"

+ दूसरा पूर्व रूप

जहाँ वस्तु नाश होने पर भी पहिली दशा न मिटे:—

१—"*अथयेहु ससि हँसनि की छाई जोन्हि अनूप।*"

चन्द्रमा के अस्त होने पर भी हँसी का प्रकाश है।

२—"*दिया बढ़ायेहू रहत बड़ो उज्येरो गेह।*"

अनुगुण ×

जहाँ पर संगति के कारण स्वाभाविक गुण का अधिक विकास हो:—

१—"*मानिक मनि करतल परसि अति ही अरुन दिखाय।*"

२—"*ससि-दुति मिलि सौ गुन भयो भूषण बसन प्रकास॥*"

× अनुगुन संगति तें जबै पूरब गुन सरसाय।
मुक्त-माल हिय हास तें अधिक सेत ह्वै जाय॥ (भाषाभूषण)

३—"मुक्त-माल हिय हासते अधिक सेत ह्वै जात।"

मीलित (मिला हुआ +)

किसी बलवान धर्म वाली वस्तु में वैसे ही रूप वाली वस्तु सादृश्य के कारण छिप जाय।

१—*हे शिवराज, तेरे कर्त्तव्य के स्वेत यश में छिपे हुए ऐरापति हाथी को इन्द्र ढूँढ़ता है; वरुण क्षीर-सागर ढूँढ़ता है; हंस मान सरोवर को ढूँढ़ता है; चकोर चन्द्रमा को ढूँढ़ता है; परन्तु वह मिलते नहीं हैं अर्थात् तेरे स्वेत यश में ये सब वस्तु मिल गई हैं।"*

२—*राका-निसि सीता छिपीं राम न पावत देख"*

चन्द्रमा की स्वेत चाँदनी में, स्वेतवर्ण वाली सीता जानी नहीं जातीं।

३—"बेनु हरित-मनि मय सब कीन्हे।
सरस सपर्ण परहि नहिं चीन्हे॥"

हरे बाँसों में हरी मणियाँ लगी हुई एक दम मिल गई हैं।

४—अरुन अधर में पकि की लीक न परत दिखाय।

+ मीलित सो सादृश्य तें भेद जबै न लखाय।
अरुन बरन तिय चरन पर जावक लख्यो न जाय। (भाषाभूषण)

उन्मीलित +

कोई वस्तु सादृश्य से भेद न होने पर किसी हेतु जानी जाय—

१—"हे शिवाजी, तेरे श्वेत यश में छिपी हुई चमेली सुगंध से और हंस बोली से पहचाना जाता है"

२—"दीठि न परत समान दुति, कनक कनक से गात।
भूषन कर करकस लगे परस पिछाने जात॥"

सोने से शरीर पर सोने के भूषण छूने से पहचाने जाते हैं।

३—वय-वपु-वरन, रूप सोइ आली। सील सनेह सरस सम चाली॥
पै पुनि सो सखि सीय न संगा। आगे चली अनी चतुरंगा॥

सामान्य *

मीलित अलंकार में तो सदृश-रूप में अन्य-रूप लीन हो जाता है किन्तु सामान्य में पृथक् रूपों का सादृश्य से भेद नहीं जाना जाता।

+भेद फुरै मीलित विषै उन्मीलित चित चैन।
समझौ परत सुगंध तैं तन केसर को ऐन॥ (पद्माभरण)

"मीलित में तब भेद बखाने।
अलंकार उन्मीलित जाने॥" (मंजुकार दीप)

*"सु सामान्य सादृश्य तें समुझि विशेष परै न।
दुरी चित पुण्डरीक में सिय सिय लखि को न॥" (पद्माभरण)

सामान्य जु सादृश्य तें जानि परै न विशेष।
बहि कर भुति बसन सम तिय लोचन अनिमेष॥ (भाषाभूषण)

"भादों अँधियारी निसा, घन गरजत बरसाय।
नृप-प्रताप-असि तड़ित-दुति भेद न जान्यो जाय॥"

ऐसे अंधकार में राना प्रताप की तलवार और बिजली की
ऱ में भेद नहीं जाना जाता।

"न्हात सरात न तियन के मुख पदमाकर बीच।"

कमलों में तिय-मुख नहीं पहचाने जाते।

विशेषक +

भिन्न रूपों के सादृश्य में कुछ विशेषता पाई जाय अर्थात्
मता में सत्यता प्रगट की जाय।

—*"जानि परत है काक पिक ऋतु बसंत के माहिं।"*

काक पिक एक से हैं, पर बसन्त आने पर बोली से भेद
त जाता है।

—*"सरसे कमलनि मधि बदन तिय को परै न जानि।*
मुसिक्यावनि लावनि पलक बतरावनि पहिचानि॥"

तिय बदन कमलों में ऐसा मिल जाता है कि मुसकान
दि क्रियाओं से जाना जाता है।

+ सामान्य में होत विशेष जो, यह भाव विशेषक जानो सोइ। (दास)
जु विशेषक सामान्य में कहैं विशेष को रूप।
[illegible] में मुसकानि है मैं पिक [illegible] [illegible] (पद्माकर)

गूढ़ोत्तर ×

गूढ़ अभिप्राय सहित उत्तर में गूढ़ोत्तर अलंकार होता है:

१—"*दिन दस गये बालि पहँ जाई। पूछिय कुसल सखहि उरला*

यहाँ उत्तर विशेष अभिप्राय से भरा हुआ है, अर्थ 'शीघ्र मारे जाओगे'

२—"*कह दसकंध कवन तैं बन्दर। मैं रघुवीर दूत दसकन्धर*

यहाँ अंगद ने साभिप्राय उत्तर दिया है अर्थात् उसने बन्दर सम्बोधन करके अनादर किया तथा अंगद ने अपने राक्षस नाशक राम का दूत प्रगट किया।

३—"*कालि सखी हौं जाउँगी पूजन देव महेस।*"

चित्रोत्तर ‡

प्रथम भेद—जहाँ प्रश्न के पद ही में उत्तर मिले

"केदार पोषण रत:" अर्थात् कौन दार (स्त्री) के पोषण में रत (लगे हुये) हैं ? जो केदार (क्यारी) के पोषण करने में रत हैं अर्थात् किसानगण।

द्वितीय भेद—जहाँ अनेक प्रश्नों का एक उत्तर हो

× गूढ़ोत्तर कछु भाव तें उत्तर दीन्हें होत।
उत बेतस-तरु में पथिक उतरन लायक सोत॥" (भाषाभूषण)

गूढ़ोत्तर उत्तर जहाँ साभिप्राय उचार।
बसौ पथिक इत मातु ही आयैं नगर अवार॥ (पद्माभरण)

‡ प्रथम—प्रश्न वचन में उत्तर कहै।
सोई चित्र अलंकृत रहै॥
द्वितीय—बहु प्रश्नन को उत्तर एक।
द्वितीय चित्र कवि बरन अनेक॥" (मनोहर हार)

'बढ़ रहे हैं क्यों निरन्तर नित्त नूतन रोग ?
क्यों न होते शक्तिसाली, पूर्व के से लोग ?
सर्वथा स्वल्पायु होकर घट रहे क्यों आर्य्य ?
पूर्वजों के तुल्य क्यों होते न हमसे कार्य्य ?'
एक उत्तर है यहाँ पर "ब्रह्मचर्य्याभाव"

इन सब प्रश्नों का एक "ब्रह्मचर्य्याभाव" यही उत्तर है।

१—"को कहिये निसि में दुखी, कौन नौल तिय वास।

रात्रि में कौन दुखी होता है इसी पद में उत्तर है "कोक" ही रात्रि में दुखी है। नई तिय का बास कहाँ? इसी पद में उत्तर है, 'कौन' में नवल तिय का बास है।

२—"का वर्षा जब कृषी सुखाने"

खेती सूखने पर क्या वर्षा है? उत्तर होता है, 'का वर्षा' अर्थात् बुरी या व्यर्थ वर्षा है।

"कोसबसाधन इष्ट है, मेटन सब दुख द्वन्द।
कोकहिये दुःखित रहे देखत राका चन्द॥"

अर्थात् को सब साधन इष्ट है? उत्तर-"कोस-बसा धन! और को कहिये दुःखित रहे? उत्तर—कोक हिये दुःखित रहे।

सूक्ष्म *

जब दूसरे के भाव को समझ कर किसी युक्ति से या संकेत से अपने मन के भाव को प्रगट करे वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है:—

---

* "आशय लखि पर को सैननि जब मनको भाव जनावै।
समझि लेहु तब अलंकार यह सूक्ष्म नाम कहावै॥" (अलंकार दर्पण)
सूक्ष्म पर आशय लखै सैनन में कछु भाय।
मैं देख्यो यह सीसमनि केसन लियो छिपाय॥ (भाषाभूषण)

× व्याजोक्ति

प्रगट हुए भेद को किसी बहाने से छिपाया जाय।

१—"अश्वारोही भू गिरयौ फटे वस्त्र समुदाय।
प्रगट भये फिर यों कही, झाड़ी उरझ्यौ जाय॥"

२—"सिवा बैर औरँग बदन लगी रहै नित आहि।
कवि भूषण बूझे सदा कहै देत दुख साहि॥"

❀ गूढ़ोक्ति

जहाँ और के बहाने से और से बातें कही जावें—

१—रे गयंद मतिअंध छिनहु समुचित तोहि नाहीं।
बसिबौ अब या विपिन घोर दुर्गम भुइ माहीं॥
गिरि-सिलानि गज जानि नखानि सों विद्रावित करि।
गिरि कंदर में परयौ लखौ यह निद्रित केहरि॥

गयन्द के बहाने किसी अहंकारी सत्ताधारी के प्रति यह कथन है कि तुम्हारा बलवान शत्रु उपस्थित है।

१—"दिन दस आदर पाइके करिले आपु बखान।
जौलों काक सराधपख तौलों तुव सनमान॥"

काक के बहाने किसी दंभी के प्रति उक्ति है।

× "गुप्त करै आकार, आन हेतु की उक्ति सों।
यह व्याजोक्ति विचार, समुझैं नीके चतुरनर॥" (अलंकार दर्पण)
'व्याजोक्ति आकार जहँ दुरै हेतु करि आन।
अली न कर कैतकि लगी उर कंटक संतान॥" (पद्माभरण)

* "कहै और सों बात, अब सुनाय के और कों।
ये कवि मति अवदात, सो जानै गूढ़ोक्ति कों॥" (अलंकार दर्पण)

सीता जी ने प्रेम सहित निज हाथ पर 'राम' लिखा, जब सखियाँ देखने लगीं तो आराम (उपवन) कर दिया।

× लोकोक्ति

जहाँ सामान्य कथन को प्रचलित लोकोक्ति से पुष्ट किया जाय:—

१—"दुख सुख सब कहँ होत हैं पौरुष तजहु न मीत।
मन के हारें हार है मन के जीते जीत॥"

२—जन समूह में आदर लहैं। साँचहु परतिष्ठित सो अहै॥
व्यर्थ-अहंकारी वड़ कबहै, "अपने घर के राजा सब हैं"॥

३—अवसर पै कीयो नहीं यदि प्रयत्न हित-हेत।
"फिर पछताये होत का चिरियाँ चुग गईं खेत॥

४—भाँति भाँति नीच ऊँच रुचि आछी।
चहिय अमी जग जुरहि न छाछी॥

५—वृथा मरहु जनि गाल बजाई।
मन मोदक नहिं भूख बुझाई॥

× "लोकोक्ति कछु बचन में लीजे लोक प्रवाद।
नैन मूँदि कछु मासलौं सहिहैं बिरह विषाद॥" (भाषाभूषण)
"दुनियाँ की कहनावति कहै।
तहँ लोकोक्ति अलंकृत रहै॥" (अलंकार ग्रंथ)
"ऊधौ तुम जानो कहा जाने कहा अहीर।
जानत नीकी भाँति है बिरहनि बिरहिनि पीर॥" (अलंकार ग्रंथ)

÷ छेकोक्ति

जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से हो:—

"खग जाने खग ही की भाषा, ताते उमा गुप्त करि राखा।"

किसी मनुष्य ने दूसरे से, किसी विषय के सम्बन्ध में पूँछा। उसने तीसरे पुरुष की ओर संकेत करके कहा "खग जाने खग ही की भाषा" अर्थात् आपकी बात को आप ही जैसा यह दूसरा आदमी समझता है, मैं नहीं।

"सत्य सराहि कहेउ वर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबैना।"

चबैना नहीं चाहिये—'राज चाहिये'।

"जो गायन को फेरिहै ताहि धनञ्जय जान"।

स्वभावोक्ति

(१) जहाँ पर किसी के स्वाभाविक गुण, व्यवहार, क्रियादि का वर्णन हो; इसके दो भेद हैं—सहज और प्रतिज्ञा बद्ध

+ "लोकोकति कछु भेद सों छेकोकति परवीन"
"छेकोकति लोकोक्ति में गर्भित अरथ जु आन।
झूठो खात जु मीठ को यहै बात टिकटान॥" (पद्माभरण)
"लोकोकति में आन अरथ कौं जब गर्भित करि दीजै।
सो छेकोकति अलंकार है समुझि चित्त में लीजै॥ (अलंकार दर्पण)

+ स्वभावोक्ति बरनत जहाँ केवल जाति स्वभाव।
फरकत फाँदत फिरत फिर तुव तुरग रघुराव॥ (पद्माभरण)
स्वभावोक्ति वह जानिये बरनन जाति सुभाय।
हँसि हँसि देखति फिर झुकति मुँह मोरति इतराय॥ (भाषाभूषण)
उक्ति प्रतिज्ञाबद्ध जहँ भेद दूसरो भाय।
मवधि इन्द्रजित हतहुँ बर संकर करें सहाय॥

१ सहज—

१—"फेरहिं चतुर तुरँग गति नाना। हरषहिं धुनि सुनि पनव-निसाना"।

२—"लै उछंग कबहूँ हलरावे, कबहुँ पालने घालि झुलावे।"

३—"धूरि धुरेंटे धरनि में धरत अटपटे पाँय।
लाल लटपटे औसरनि भाषत सखि हरषाय॥"

यहाँ बालक जाति का 'धूरिधुरेंटे' पद से तथा "ला लटपटे औसरनि भाषत" पद से स्वभाव व चेष्टा कथित है

४—भोजन करत चपल चित इत उत औसर पाय।
भाग चले किलकात मुख दधि ओदन लिपटाय॥

(२) जहाँ प्रतिज्ञाबद्ध कोई बात कही जाय दूस स्वभावोक्ति है।

सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सती भेट अब नाहीं

तोरहुँ छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जो न करहुँ तव पद सपथ पुनि न धरहुँ धनु हाथ॥

* भाविक (दशा जानने वाला)

भूत और भविष्यत को वर्तमान की भाँति कथन करना एक ही साथ कथन करना।

---

*"भाविक भूत भविष्य जो परतछ होय बताय।
वृंदावन में आज वह लीला देखहु आय॥" (भाषाभू

"भूत भविष्यत वर्तमान को जब परतच्छ दिखावे।
या विधि भाविक अलंकार को बरनन करि समुझावे"॥

"चित्रकूट-गिरि लखत ही उदय हिये यह भाव ।
सीता-लछमण-युत अजहुँ, बसहिं यहीं रघुराव ॥"
" पूरे प्रेम भरे सदा राधा नंदकुमार ।
लखि आईं चालि आलि भटू अब लौं करत विहार ॥"

+ उदात्त ।

जहाँ असंभव धन का वर्णन हो अथवा किसी अर्थ में बड़ों का महत्त्व दिखाया जाय ।

१–"अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज ।
अगनित सेना साथ में को गिनि है गज-बाज ॥"

२–"करत भये जा के तरे राधा कृष्ण विहार ।
सो न होय क्यों तरुन को वंसबिट शृङ्गार ॥"

३–जेहि तिरहुत तिहि समय निहारी। तिहि लघु लाग भवन दस चारी।

४–"या पूना में मति टिको खान बहादुर आय ।
ह्यांई सायतखान को दीनी शिवा सजाय ॥"

५–"बसन जरी के पहिरि कें बैठी सुबरन धाम ।
निकट गये पै सखिन हू नीठि निहारी बाम ॥"

+ (प्रथम) चरित प्रसंसा कीजै। तहँ उदात्त कहि दीजै ।
(द्वितीय) रिद्धिवन्त यह चरित बखानै । तहँ उदात्त दूजौ पहिचानै ॥"
(अलंकार दर्पण)

× अत्युक्ति।

जहाँ उदारता और वीरतादि का अत्यन्त वर्णन हो।

१—"*गज, रथ, तुरग, हेम, गौ, हीरा।*
दीने नृप नाना विधि चीरा ॥"
"*जिहि पावा राखा नहिं ताऊ।*
राम दरस लालसा उछाह।"

२—"*जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप।*"

३—"*गनत न कछु पारस पदम चिंतामणि के ताहि।*
निदरत मेरु कुवेर को तुव जाचक महि माँहि ॥"

४—"*इते उच्च सैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र।*
तोरत कम्पित करन सों मुकता समुझि नछत्र ॥"

पहिले उदाहरण में दान की और दूसरे में वीरता की अत्युक्ति है।

निरुक्ति (कल्पित पचन)

नामों का अपनी बुद्धि से अन्य अर्थ

×बहुत मिथ्या होय, जहँ

"इन चरितन ते कहत हैं दोपाकर तुव ना

'दोपा' नाम रात्रि, 'कर' नाम करने वाला अर्था
चन्द्रमा, यह प्रकृत-अर्थ है। परन्तु वियोगी आदि के
नाम सत्य ही दोपाकर (दोपों की खानि) यह कवि

१—"निसि बासर बिहरत फिरौ बहु गोपिन के
नीकी बानि गही कियो सही बिहारी न

२—नाम धर्यो याते जग मोहन मोह न नेकु

+ प्रतिपेध (तिरस्कार)

जहाँ प्रसिद्ध निपेध अर्थ का अर्थान्तर से नि

१—"धूर्त शकुनि, जूआ न यह,—तीरे पान

भीमसेन शकुनि से कहते हैं—"धूर्त श
नहीं है, जहाँ पासाओं से जीता जायगा,
युद्ध है।

२—"छूटी न गाँठ जु राम दे तियनि कर
तिय-कंकन को छोरिबो धनुष तोरि
यहाँ सखियों ने धनुष तोड़ने का अर्थान्त

"जेल निपिद जो अर्थ निरोरी

बहुत समझि के कीजिये निपट कठिन है रीति ।
हँसी खेल की बात नहिं यहै नागरी प्रीति ॥"

❀ विधि (क्रम)

जहाँ सिद्धि वस्तु का विधान किया जाय ।

"पंचम की ध्वनि के समय ही कोकिल कोकिल है ॥"

यहाँ कोकिल का कोकिलत्त्व विधान करना अनुपयुक्त है किन्तु सम्पूर्ण जनों के हृदय के आकर्षण के कारण, अर्थान्तर से कोकिलत्त्व का विधान किया गया है ।

"मुरली मुरली होति है मोहन के मुख लागि"

यहाँ मुरली का मोहन के मुख पर लगने से मुरली होने सिद्धवस्तु का विधान है ।

हेतु अलङ्कार । ❀

(१) जहाँ कार्य्य के साथ कारण कथन हो । (२) अथवा अभेद हो:—

❀ विधि कहियतु है सिद्ध जहँ अर्थ साधिये फेर ।
कोकिल है कोकिल जबै रितु में करि है टेर ॥ (भाषा भूषण)
हेतु हेतु मत साथ ही हेतु कह्यो जेहि ठाम ।
लग तजि था बन को नये ये बनये घनश्याम ॥
इकता कारन हेतु को हेतु कहत सु कविन्द ।
परम पदारथ चाहिह श्रीराधा गोविन्द ॥" (पद्माभरण)

"अरुण उदय अवलोकहु ताता। पंकज-कोक-लोक सुखदाता।"

यहाँ पंकज, कोक, लोकों को, सुख देने के लिये सूर्य्य का उदय होना हेतु और कार्य्य का एक साथ कथन है—

१—"अब हृदय हुआ है और, मेरे सखा का।
अह है! वह नहीं तो क्यों सभी भूल जाते॥"
"यह नित-नव-कुंजें भूमि शोभा-निधाना।
प्रति दिवस नहीं तो क्यों नहीं याद आती॥"
"भूपन दईत हिरिनाकुस बिदारिबे कों,
भयो नरसिंह रूप तेजबिकरार है"।
"कामिनि अति हरषित भई फरकत बायों नैन।
आम्यो आय बिदेस तें मिलिहै पिय सुख दैन॥"

२—जा तन तुम चितवत तनक मंद मंद मुसक्याय।
ताहि तुरत सब भाँति सों नव निधि सुख सरसाय॥

इति अर्थालङ्कार

संसृष्टि संकर अलङ्कार।

जहाँ कहीं सम्पूर्ण अलङ्कारों में से कोई दो या अधिक अलङ्कार मिले हों। इसके दो भेद हैं—संसृष्टि और संकर।

संसृष्टि।

* तिलतन्दुलन्याय से जहाँ दो अलङ्कार मिले हों, अर्थात मिल कर पृथक् २ दिखाई देते हों, इसके तीन भेद हैं—

शब्दालंकार से शब्दालंकार मिला हो।
अर्थालंकार से अर्थालंकार मिला हो।
शब्दालंकार से अर्थालंकार मिला हो।

"समरु मरन पुनि सुरसरि तीरा।
राम काज छिनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू।
बड़े भाग अस पाइय मीचू॥

'र' की आवृत्ति से इसमें वृत्यानुप्रास है "समर में मरना धर्म है" यही एक भाव युद्ध के लिये प्रस्तुत करने को पर्याप्त था, सुरसरि का किनारा और राम काज मिलकर और भी उस भाव को प्रबल कर रहे हैं, इस लिये **समाधि है**

---

* *तिल तन्दुल के न्याय सौं है संसृष्टि बखान।*
नीर छीर के न्याय सौं संकर कहत सुजान॥
जुदे जुदे जाने परैं सो "तिल-तन्दुल" न्याय।
जहाँ जुदे नहिं लखि परैं नीर छीर सों भाय॥

राम काज के लिये मृत्यु की चाहना इससे अनुज
भरत राजा के भाई 'मैं' 'नीच' इस से पहिला विप
सब अलंकारों का अस्तित्व पृथक् २ है इसलिये संसृष्टि

१—"सुठि सुकमार कुमार दोउ जनक सुता सुकमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ बन फिरेहु गए दिन चारि"॥

२—"बीथिन बजार प्रति अटन अगार प्रति पँवरि पगार
बानर बिलोकिये।"

इन में वृत्ति और यमक की संसृष्टि है।

लख्यो सुमन ह्वै है सुफल आतप रोस निवारि।
बारी बारी आपनी सींचि सुहृदता बारि॥

यहाँ श्लेष यमकवाचकधर्मलुप्ता अथवा रूपक की संसृष्टि है

जाके नामहि के सुने होत सौति मुख मन्द।
चल चकोर कीजै सुखी लखि राधा-मुख चन्द॥

यहाँ चपलातिशयोक्तिरूपक की संसृष्टि।

संकर।

नीरक्षीरन्याय से मिले हुए अलङ्कार में संकर अलङ्कार होता है; अर्थात् मिल कर प्रत्यक्ष न दिखाई देते हों। इसके चार भेद हैं:—

१—अङ्गाङ्गिभाव—वट बीज के न्याय से दो अलङ्कार मिले हों, अर्थात् एक गौण दूसरा प्रधान, दोनों एक दूसरे के आश्रित हों।

२—समप्राधान्य—जो सूर्य और दिन के न्याय से एक साथ प्रकट होकर, एक साथ जाते जाँय।

३—संदेह—बहुत से अलङ्कार होने पर एक का निश्चय न हो सके अर्थात् दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन की भाँति

जिसकी स्थिति न हो सकती हो वहाँ सन्देह होता है ।

एक वाचकानुप्रवेश-जहाँ एक वाक्य या पद में अलङ्कार हो ।

"छिन छिन" पिय-बिधु बदन निहारी ।
प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥"

इसमें रूपक गर्भित उत्प्रेक्षा है उत्प्रेक्षा का अङ्ग रूपक होने से अङ्गाङ्गी भाव है ।

अलि ए उड़गन अगिन कन अंक धूम धुव धारि ।
मानहुँ आवत दहन ससि लै निज संग दवारि ॥
सल बढ़ई बल करि थके कटै न कुबत कुठार ।
आलवाल-उर झालरी खरी प्रेम तरु डार ॥

यहाँ रूपक से विशेषोक्ति हुई वह कारण है काटने में कार्य्य न हुआ इस तरह से भी जानिये ।

यहाँ रूपक उत्प्रेक्षा का अङ्ग है ।

यों भूलत कोऊ कहू राखो हिये सयान ।
भजो मधुप तजि पदमिनिहिं जानि होत गत भान ॥

यहाँ प्रस्तुतांकुर और गूढ़ोक्ति में सन्देह है इससे सन्देह सङ्कर है ।

कही हमारी चित धरी तजो लाल सब बात ।
नैनन को सुख देत यह इन्दु बिम्ब सरसात ॥

काम का उद्दीपन करने वाला यह काल है इस बात को बना कर इस तरह से कहना है इससे पर्य्यायोक्ति है । इन्दु बिम्ब से नायिका का मुख लिया गया । इससे रूपकातिशयोक्ति है । यह सन्देह से सङ्कर है ।

इति संसृष्टि-संकरालङ्कार ।

अलङ्कार विशे

इन अलङ्कारों के अतिरिक्त कुवलय
कर जी ने १५ अलङ्कार और कहे हैं जि
और ८ प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तर्गत हैं ।

रसवदादि अलङ्कारों के लिये रस अ
किया जाता है ।

स्थायी-भाव-और

रति,' हाँसी,' शोक,' भय,' क्रोध
आश्चर्य' और निर्वेद' नौ स्थायी भा
पुस्तक के प्रारंभ में बता चुके हैं, इन्हीं स्था
शृङ्गार,' हास्य,' करुणा,' भयानक,' रौद्र
अद्भुत,' शान्तरस' अनुभाव, विभाव, औ
सहारे से बनते हैं ।

शृङ्गार—इसका स्थायी भाव रति है, ना
आलम्बन हैं । सखी सखा, बसन्त, पुष्प-वा
उद्दीपन भाव हैं । मुसिक्यान आदि अनुभाव
क्रीड़ा, उत्सुकता आदि इस के संचारी भाव

हास्य—हँसी इसका स्थायी भाव है ।
आलम्बन है । भेष भूषादि से वचन, चेष्टा
विभाव है । मुसकराना, हँसना आदि अनुभाव
आदि इसके संचारी भाव हैं ।

अलङ्कार विशेष।

इन अलङ्कारों के अतिरिक्त कुवलयानंद के मत से पा
कर जी ने १५ अलङ्कार और कहे हैं जिनमें सात रसवदादि
और ८ प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तर्गत हैं।

रसवदादि अलङ्कारों के लिये रस और भावों का उल्ले
किया जाता है।

स्थायी-भाव-और-रस।

रति,' हाँसी,' शोक,' भय,' क्रोध,' उत्साह,' घृणा,
आश्चर्य' और निर्वेद' नौ स्थायी भावों के नाम पहिले
पुस्तक के प्रारंभ में बता चुके हैं, इन्हीं स्थायी भावों से क्रम से
शृङ्गार,' हास्य,' करुणा,' भयानक,' रौद्र' वीर,' वीभत्स,'
अद्भुत,' शान्तरस' अनुभाव, विभाव, और संचारी भावों के

मद—विद्या, द्रव्य, यौवनादि के आने पर उलटी बातें करना।
मोह—मद, भय और अज्ञानता आदि से चित्त बे ठिकाने होना।
उन्माद—द्रव्यादि तथा विचार वियादि से आचार नष्ट होजाय, व्यर्थ हँसे बोले व बके।
जड़ता—ज्ञान का घटना, गति का थकना, चेष्टा रहित होना।
विषाद—इष्ट सिद्ध न होने से सोचना, पीला पड़ना।
व्याधि—काम, क्लेश और भयादि से ज्वरादि होना।
मरण—व्याधि वा आघात से मरना वा मरणासन्न होना।
अपस्मार—मृगी रोग की सी दशा होना।

१—रसवत अलङ्कार—जहाँ किसी भाव या रस का अंग रस हो;
"जयति जयति घट संभव ज्ञानी + मगरय, कच्छ अंजलि विच आनी" ॥

यहाँ कुंभज ऋषि विषयक-रति है। वह पद्य के प्रथम भाग में कही है। उसकी पुष्टि पिछले पद्य में वर्णित अद्भुत रस से है। बड़े मच्छ कच्छ अवतारों के शरीर को अंजलि में देखना, अद्भुत रस है। अतः देवादि रति विषयक भाव का अद्भुत रस अंग है।

जिहि राखी ब्रजमण्डली जु गिरि सु कर परछाइ।
तजि गुमान तासों भटू मिलो हिये हरखाइ॥

यहाँ दया वीररस, शृङ्गार का अङ्ग हुआ।

२ प्रेयालङ्कार—जहाँ किसी रस व भाव का अंग भाव हो
कब होइहइ यह समय अनूपा। निरखहुँ निज नयननि हरिरूपा॥
यहाँ देव विषयक रति है, उसका (चिन्ता) सचारीभाव अंग है।

प्रभु पद सोंह करें कहत वाहि तुच्छ इक तीर।
लखत इन्द्रजित को हनहुँ तो मैं लछमन वीर॥

यहाँ गर्वव्यभिचारी भाव क्रोधस्थायीभाव का अंग हुआ।

३ ऊर्जिस्वत—जहाँ भाव का अंग, रसाभास वा भावाभास हो
"राजन्, वैरी भी आपकी कीर्ति देखकर धन्य धन्य कहते हैं।"।

वैरी के द्वारा बड़ाई पाना (हर्ष) भाव का अनुचित व्यवहार है, अतः भावाभास है, वह प्रभुविषयक-रति का अंग है।

ताहि अनूप बखानहीं सकल कबिन के गोत।
मुख-सरोज जाको निरख सौत नयन अलि होत॥

यहां सपत्नीनिष्ठ भावाभास श्रृङ्गाररस का अङ्ग हुआ।

प्रधान संचारीभाव; तथा देव, गुरु, शिष्यादि विषयक प्रेम, जिसकी विभावादि से पुष्टि न हुई हो, ऐसा स्थायीभाव; भाव के अंतर्गत है।

"लखन-राम-सिय सुंदरताई, देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहि मन माहीं, नाम गाँव पूँछत सकुचाहीं॥

यहाँ रामादि-विषयक-रति का अंग, (दर्शन की) उत्सुकता और संकोच की सन्धि है।

४—समाहित—जहाँ रस वा भाव का अंग, भाव शान्ति हो।

गुरु को देखते ही अर्जुन ने ताने हुए धनुष को अलग फेंक दिया और आँखों से अश्रुप्रवाह बह चला।

गुरु विषयक रति का और भाव शान्ति, अंग है.

आयो भ्रात लिवायबे निराति उठी हरखाय।
सुनि धुनि चातक की तबहि चली भाजि अकुलाय॥

यहाँ हर्षरूपभाव शान्तिप्रासरूपभाव का अंग हुआ।

भावोदय—जहाँ रस वा भाव का अंग भावोदय हो,

"राम कथा सुनि सुनि हरषायो, दीव दरस कब दिय अकुलायो॥"

यहाँ दर्शन करने का जो भाव उदय हुआ है, औत्सुक्य है; वही राम विषयक रति का अंग है।

भावसंधि—जहाँ रस वा

चलत वीर संग्राम को अति बिजली निज चाल ॥
धनुषबान तन में कढ़े सिगरे पुलक तत्काल ।
यहाँ स्थायी निषक-रति भाव का अंग
रस-वीरगुरुष की संधि है ॥

भाव शाबल्य—जहाँ रस वा भावों का अंग,
"पीताम्बर पहरें सुभग मुरलीधर गोपाल ॥
'कब मिलि हैं' कहि क्यों मिलें; यों कहि गिरी बिह
पीताम्बर धारी, मुरलीधर गोपाल, 'स्मरण'
कब मिलि हैं, 'उत्कंठा'; क्यों मिलें 'शंका',
बिहाल होकर गिरी'''मरण; यह अनेक भाव
रति के अंग हैं ॥

प्रमाण ।

'प्रमाण' अलङ्कार ८ प्रकार का होता है—
१-प्रत्यक्ष—मन और ज्ञानेन्द्रिय-जनित-ज्ञा
चमत्कार हो ।

हौ देखहुँ देखत सबै इकटक दगनि सं
साँचहु सुन्दर साँवरो लसहि जोग मज म

२-अनुमान—धुएँ के देखने से अग्नि का अनुम
उसी भाँति जहाँ अनुमान से निश्चय हं

उर बिन-गुन के हार तें एहो नन्द कुम
हौ जानत धौमहु बिते तुम कहुँ कियो बि

३—उपमान—जैसे सुना कि राम श्यामवर्ण
धनुषबान है, मुकुट शिर पर है,

इन्दीवर सो धर बरन मुख ससि की उनहार ।
धरे तड़ित सम पतिपट ऐसो नन्दकुमार ॥

४–शब्द प्रमाण—श्रुति, स्मृति तथा लोकोक्ति द्वारा किसी कथन में चमत्कार हो, वहां शब्द प्रमाण होता है ।

बिन दृग देखत सबनि को सुनत सबै बिन कान ।
बिन पग सब थल सञ्चरत सु परमातमा जान ॥

५–अर्थापत्ति—जहाँ व्यर्थ अर्थ, अन्य योगों के द्वारा निश्चय किया जाय । हे हरि, तुम में शक्ति है, यदि ऐसा न होता तो राक्षसों को कौन मारता । हे मनुष्य, तेरे हाथ हैं; यदि ऐसा न होता तो तलवार क्योंकर चलाई जाती ।

देवदत्त यह बहुत मुटानो ।
खात न दिन महँ एकहु दानो ॥

अर्थात् रात में खाता होगा ।

६–अनुपलब्धि—जहाँ किसी वस्तु के अस्तित्व का अभाव माना जाय; जैसे:- पेंदा भी मट्टी है, मुँह भी मट्टी है, घड़ा कहाँ है ! यह चमड़ा है, यह सिर है, मनुष्य कहाँ है ।

७–संभव—जहाँ किसी वस्तु का "संभव" माना जाय । हे भगवान् वह कौन से दुःख हैं, जो अब तक न हुए हों और आगे चलकर हों । परन्तु तुम्हारे शरणागत का पराभव तुम्हारे योग्य कार्य्य नहीं है ।

८–ऐतिह्य—जहाँ इतिहास-सम्बन्धी चमत्कार, काव्य में हो ।

अलङ्कारों में साधारण भेद ।

उपमा में—उपमान और उपमेय का एक ही धर्म कथन किया जा
जैसे :—मुखचन्द्र सा है ।

रूपक में—समान धर्मी उपमेय उपमानों का अभेद कहा जाता है, जै
मुख चन्द्र है ।

उत्प्रेक्षा में—उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है, जैसे
मानो चन्द्र है ।

प्रतीपमें—उपमान की उपमेय से समता की जाती है, जैसे मुख सा च

अपह्नुति में—उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाता
मुख नहीं चन्द्र है ।

परिणाम में—उपमेय उपमान मिलकर काम करते है । जैसे मुख च
आनंद देता है ।

स्मरण में—उपमान को देख कर उपमेय याद आता है । जैसे चन्द्र
देखकर मुख याद आता है ।

सन्देह में—उपमेय उपमान में सन्देह रहता है । जैसे:-मुख है या चन्द्र

दीपक में—उपमान और उपमेय दोनों का एक धर्म कथन किया जाता है ।
जैसे:—मुख और चन्द्रमा आनंद देनेवाले हैं ।

निदर्शना द्वितीय में—उपमेय उपमान परस्पर एक दूसरे के गुणों को
धारण करते हैं । जैसे :—मुख की मधुरता चन्द्रमा
में पाई जाती है ।

व्यतिरेक में—उपमेय उपमान की समानता न्यूनाधिक भाव में होती है,
जैसे मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है किन्तु वह अविकारी है ।

तुल्य योगिता और उल्लेख।

तृतीय तुल्य योगिता में—एक की अनेक से समता दी जाती है।

दूसरे उल्लेख में—एक के गुणों को अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है।

तुल्य योगिता और दीपक।

तुल्य योगिता में—केवल उपमानों और केवल उपमेयों का एक धर्म कहा जाता है।

दीपक—उपमेय उपमान का धर्म एक साथ कहा जाता है।

उल्लास और अवज्ञा एक दूसरे के प्रतिकूल हैं जिन में वस्तु व्याप्त गुण दोष लिये जाते हैं।

तद्गुण और अतद्गुण भी एक दूसरे के प्रतिकूल हैं इन अलंकारों में गुण का अर्थ केवल रंग से है वस्तु व्याप्त गुण से नहीं होता है।

विशेषक और उन्मीलित

विशेषक—वस्तु भिन्न-रूप हों, पर उनका मिलना (एक होना) विशेष बात कह कर पुष्ट किया जाय।

उन्मीलित—वस्तु एक सी हों, कुछ भेद न जान पड़े, परन्तु किसी हेतु से भेद दिखाया जाय।

सूक्ष्म और पिहित

सूक्ष्म—दोनों ओर से इशारे द्वारा भेद समझा जाता है।

पिहित—किसी अन्य का छिपा भाव समझ कर आप कोई चतुराई से करे।

उक्तियां

व्याजोक्ति—खुलते हुए रहस्य को बहाने से छिपाना।

वक्रोक्ति—और के कहने से और से अर्थ को जावें।

विवृतोक्ति—रहस्य कवि द्वारा स्पष्ट कर दिया जाय।

युक्ति—मर्म, चतुर क्रिया द्वारा छिपाया जाय वा प्रकट किया जाय।

उपमान उपमेयवाक्य

प्रतिवस्तूपमा—उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य का समान धर्म
सार्थक वाचक शब्दों द्वारा पृथक् पृथक् कहा जाता

दृष्टान्त—उपमेय वाक्य और उपमान वाक्यों की समता, वाचक
बिना दिखाई जाती है।

अर्थान्तरन्यास—एक उपमेय वाक्य द्वारा उपमान वाक्य का
उपमान वाक्य द्वारा उपमेय वाक्य का समर्थन
है। काव्यलिङ्ग में एक वाक्य का दूसरे से
पूर्वक समर्थन होता है।

निदर्शना प्रथम—भिन्न २ अर्थ वाले दो वाक्यों की समता वाचक
इस प्रकार दिखाई जाय कि वह एक से जान पड़े

श्लेष और समासोक्ति—

श्लेष में सब अर्थ इष्ट होते हैं और समासोक्ति में एक
लक्षित होता है, शेष भान होते रहते हैं।

अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्यायोक्ति और समासोक्ति—

अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत वर्णन से इष्ट वर्णन
होता है। पर्यायोक्ति में वर्णन कुछ भेद के साथ किया ज
है। समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन में श्लिष्ट विशेषणों द्व
दूसरा अर्थ भी लक्ष होता है।

प्रस्तुताङ्कुर और गूढ़ोक्ति—

प्रस्तुताङ्कुर में मध्यम पुरुष ही लक्ष होता है, अ
अङ्कुर (इशारामात्र) ही रहता है।

गूढ़ोक्ति मध्यम पुरुष केवल सहारा मात्र है। अ
सुनाने को ही बात कही जाती है।